Fortnightly per copy Rs. 4/- only

ओ३म्

18th July 2019

आर्य   जीवन

ఆర్య జీవన్

संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प

హిందీ - తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month

आर्य समाज के संस्थापक
महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत
अमर ग्रंथ
सत्यार्थ प्रकाश
के तेलुगु संस्करण का
लोकार्पण समारोह

दिनांक 4 अगस्त 2019 रविवार मध्याह्न 2-00 बजे से

स्थान : पंडित नरेन्द्र भवन, राजमोहल्ला, हैदराबाद

मुख्य अतिथि : माननीय श्री जी. किशन रेड्डी जी

(गृह राज्य मंत्री भारत सरकार)

सभी सादर आमंत्रित हैं ।

मुख्य अतिथि के रूप में माननीय गृह राज्य मंत्री भारत सरकार श्री जी. किशन रेड्डी जी को

निमंत्रण देते हुए आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र. -तेलंगाना के उप प्रधान श्री हरिकिशन वेदालंङ्कार जी एवं श्री श्रीनिवास जी

ओ३म्

निमंत्रण

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र. तेलंगाना, हैदराबाद के तत्वावधान में

महर्षि दयानन्द कृत अमर ग्रंथ

सत्यार्थ प्रकाश

नवीन तेलुगु संस्करण का

लोकार्पण समारोह

दिनांक ४ अगस्त २०१९ रविवार को मध्याह्न २-०० बजे से प्रारंभ होगा

स्थान : पं. नरेन्द्र भवन राजमोहल्ला, हैदराबाद

मुख्य अतिथि एवं विमोचन कर्ता : आदरणीय श्री जी. किशनरेड्डी जी

(गृह राज्य मंत्री भारत सरकार)

इस अवसर पर आर्य विद्वानों के संदेश होंगे तथा विद्वानों व प्रमुख महानुभावों का सम्मान किया जाएगा ।

विशिष्ट आमंत्रित अतिथि :

१) श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी सरस्वती
२) माता निर्मला योग भारती जी
३) श्री डॉ. विजयवीर जी विद्यालंकार
४) श्री आचार्य आनन्द प्रकाश जी
५) श्री उदयनाचार्य जी
६) श्री आचार्य भवभूती जी
७) श्री पं. चलवादी सोमय्या जी
८) डॉ. वसुधा शास्त्री जी
९) डॉ. रमेशचन्द्र भटनागर जी
१०) श्री डी.एन. गौरी जी,
११) श्री सरसम रामचन्द्रा रेड्डी जी
१२) आचार्या नीरजा जी
१३) श्री डॉ. कोडूरी सुब्बाराव जी
१४) श्रीमती माचिराजु अमृताकुमारी
(स्व. माचिराजु शिवरामराजु की धर्मपत्नी)

अध्यक्षता : श्री टा. लक्ष्मण सिंह जी (सभा प्रधान)

संचालन : श्री विट्ठलराव आर्य जी (मंत्री सभा)

सभी आर्य बंधुओं से निवेदन है कि उपरोक्त लोकार्पण कार्यक्रम में अधिक से अधिक संख्या में भाग लेकर कार्यक्रम को सफ़ल बनाए ।

भवदीय :

समस्त अधिकारी गण व अंतरंग सदस्य

आर्य प्रतिनिधि सभा आं.प्र. -तेलंगाना, हैदराबाद

(मध्याह्न १-०० बजे से भोजन की व्यवस्था की गई है)

आर्य समाज की सफलता-असफलता का हिसाब

-पूर्णचन्द्र एड्वोकेट
पूर्व प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

आर्य समाज की स्थापना १८७५ ई. में बम्बई नगर में हुई थी। इसको स्थापित हुए ८६ (१९६४ ई.) वर्ष हुए। इस अवधि में आर्य समाज को अपने उद्देश्य की पूर्ति में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है, आर्य समाज के स्थापना दिवस के अवसर पर यह एक विचारणीय प्रश्न है।

सफलता की जाँच और हिसाब के लिये आर्य समाज के उद्देश्य, आर्य समाज के लक्ष्य और आर्य समाज के दृष्टिकोण पर पहिले संक्षिप्त में विचारकर लेना आवश्यक है। आर्य समाज एक सर्वाङ्गपूर्ण धार्मिक संस्था है और इस प्रसंग में धर्म का अर्थ बड़ा विशाल और विस्तृत है। धर्म उस नियम और मर्यादा का नाम है जिसके अनुसार जीवन निर्वाह करने से प्रत्येक व्यक्ति का जीवन सफल बन सकता है और वह सांसारिक अभ्युदय के साथ निरश्रेयस और मोक्ष का भी अधिकारी बन सकता है। धर्म के क्षेत्र में जीवन का कोई कार्य बाहर नहीं है और न कोई देश और काल इसके प्रभाव से प्रथक रह सकता है। राजा और प्रजा का सम्बन्ध भी धर्म के अनुसार होना चाहिये और इस दृष्टि से राज्य की नीति भी धर्म के अन्तर्गत है। महर्षि ने राज्य नीति को राज्य धर्म के नाम से भी सम्बोधित किया है, व्यक्तियों के निर्माण के लिये शिक्षा, संस्कार, यज्ञ और योग आवश्यक है। इनका स्वरूप भी धर्म से ही सम्बन्धित है और यह भी धर्म के अन्तर्गत है।

समाज का निर्माण या समाज का ढाँचा भी धर्म का एक अंग है और इस दृष्टि से समाज सम्बन्धी सारे प्रश्न धर्म के ही अंग है।

समाज की व्यवस्था के लिये दण्ड विधान, न्याय व्यवस्था भी धर्म के आधार पर हो सकती है।

इस प्रकार यह बात भली भांति विदित हो जाती है कि महर्षि दयानन्द ने जिस वैदिक धर्म का पुनः प्रचार करने के लिये आर्य समाज की स्थापना की उसके क्षेत्र से और प्रभाव से व्यक्तियों के उत्थान और समाज के निर्माण सम्बन्धी सब प्रश्न घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है।

आर्य समाज का स्वरूप

जहाँ आर्य समाज का क्षेत्र बडा विशाल और विस्तृत है उसका स्वरूप भी वैसा ही विशाल है। आर्य समाज के स्वरूप की हम निम्न भांति समझ सकते है :-

१) प्राचीनता से आधारित। २) तर्क का पूर्ण समावेश। ३) व्यावहारिक जीवन से सर्वाङ्ग पूर्ण सम्बन्धित।

प्राचीनता पर आधारित होने की दृष्टि से महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के पहिले नियम में ईश्वर को आदि मूल और वेदों को ईश्वर की बाणी बतलाया है। आर्य समाज के नियमों में सबसे अधिक बल तीन बातों पर है। ईश्वर सब सत्य विद्या का आदि मूल है, वेद ईश्वर का ज्ञान है उसका पढ़ना पढ़ाना सब आर्यों का परम धर्म बतलाया है। और संसार का उपकार करना सब का मुख्य उद्देश्य बतलाया है। आदि मूल परम धर्म, और मुख्य उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर आर्य समाज का स्वरूप बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। बिना ईश्वर के स्वरूप को समझे, बिना वेदों के स्वाध्याय किये हुए मनुष्य को अपने धर्म और कर्तव्य का ज्ञान नहीं हो सकता और उनको कर्तव्य ज्ञान होना भी निष्प्रयोजन है। यदि यह अपने ज्ञान और सामर्थ्य को संसार के उपकार के लिए प्रयोग में नहीं लाए।

संसार के परोपकार को मुख्य उद्देश्य होने से यह बात भली भांती विदित हो जाती है कि जाति है कि आर्य समाज का लक्ष्य और सम्बंध तीसरी देश विशेष, जाती विशेष या काल विशेष से नहीं है।

परोपकार की जो परिभाषा महर्षि ने आर्य समाज के छठे नियम में दी है उस से भी यह विदित होता है कि आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति का निर्माण था और व्यक्तियों के निर्माण से ही संसार का उपकार संभव है। महर्षि ने लिखा है कि संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, मानसिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना है। शब्द **"करना"** बडे महत्व का है। यदि महर्षि करना के स्थान में महर्षि **"कराना"** लिख देते तो संभव था कि व्यक्तियों का अपनी उन्नति की ओर ध्यान में जाता वह दूसरों की उन्नति कराने में ही अपना कर्तव्य ही समझ बैठते। "करना" शब्द पर बल देने से यह प्रगट है कि आर्य समाज का लक्ष्य Individualistic और Realistic दोनों है और चारों प्रकार की उन्नति पर साथ-साथ बल देना भी महर्षि के महान उद्देश को और आर्य समाज के महत्व को भली भांति प्रगट करता है। शारीरिक उन्नति, मानसिक उन्नति दोनों अनिवार्य है। इन दोनों के साथ आत्मिक उन्नति भी अत्यन्त आवश्यक है और तीनों प्रकार की उन्नति के समन्वय से ही सामाजिक उन्नति सम्भव हो सकती है। आज संसार में शारीरिक उन्नति की ओर ध्यान है, मानसिक उन्नति के लिए कुछ व्यवस्था है परन्तु आत्मा की ओर ध्यान न देने से न शारीरिक उन्नति पूर्ण

होती है और न मानसिक उन्नति । एक दृष्टि से आत्मा की अवहेलना करने से शारीरिक बल और मानसिक बल की वृद्धि में कमी होने से कभी-कभी जीवन की मर्यादा में विघ्न पड जाता है । आत्मिक उन्नति की ओर ध्यान आकर्शित करना ऋषि दयानन्द का सबसे बड़ा उपकार और आविष्कार है । आत्मिक दृष्टिकोण पर ही बल देने से मनुष्य को अपनी सत्ता का सच्चा बोध हो सकता है । और जब मनुष्य अपने आप को आत्मिक दृष्टिकोण से समझने के योग्य हो जाता है तो उसकी दृष्टि विशाल हो जाती है । और वह देश, लिंग, जाति, संप्रदाय, रंग आदि भेदों से ऊपर उठ सकता है । आत्मा सब जीवों में समान है । आत्मिक दृष्टिकोण से न केवल मनुष्य मात्र में परन्तु प्राणी मात्र में प्रेम स्थापित हो सकता है और आत्मिक दृष्टिकोण से ही भाषावाद, प्रान्तवाद, सम्प्रदावाद और जातिवाद के झगड़े समाप्त हो सकते है । महाभारत के युद्ध के पश्चात् ऋषि दयानन्द को ही यह श्रेय प्राप्त था कि उन्होंने वेदों की ओर ध्यान आकर्षित किया और आध्यात्मिक उन्नति का ध्यान दिलाया । आत्मा के स्वरूप को समझ लेने से परमात्मा का स्वरूप समझ में आ सकता है और यहीं सच्ची आत्मिकता का आधार है । प्रत्येक पिंड में आत्मा व्यापक है और सारे ब्रह्माण्ड में परमात्मा व्यापक है । आत्मा और परमात्मा को साथ-साथ समझ लेने से सारा विश्व एक सूत्र में बंध जाता है और भावनात्मक एकता का लक्ष्य पूरा हो सकता है । आर्य समाज के स्वरूप को इस प्रकार समझ लेने से उसका उद्धेश्य भी भलीं भांति विदित हो जाता है ।

महर्षि के तीन रूप

महर्षि दयानन्द शिक्षक, चिकित्सक, समीक्षक थे । शिक्षक इस आधार पर थे कि वे प्राचीन वेदों के ज्ञान का विस्तार करना चाहते थे । और उस शिक्षा के प्रकाश में संसार में फैली हुई तृटियों का निराकरण चाहते थे और इसीलिए वे समीक्षक थे । बिना समीक्षा के न शिक्षा पूर्ण हो सकती है और न चिकित्सा । अध्यापक शिष्य को उसकी भूल का बोध बनाकर ही सच्ची शिक्षा का ज्ञान करा सकता है इसी प्रकार चिकित्सक औषधि के प्रयोग के पूर्व रोग के किटाणुओं को दूर कर सकता है । पेट साफ करने से ही उपचार सफल होता है । शिक्षा, चिकित्सा और समिक्षा को साथ-साथ समझ लेने से ही महर्षि की ,खण्डनात्मक प्रणाली के महत्व को हम समझ सकते है । जिस प्रकार नवीन भवन के निर्माण के पूर्व उसकी बुनियाद को ठीक करना आवश्यक है उसी प्रकार सच्चे धर्म प्रचार के लिए असत्य या भ्रममूलक विचारों का निराकरण आवश्यक है ।

ऋषि की खण्डनात्मक नीति का महत्व हम महर्षि के प्राचीनता के प्रेम और आदर्श को लक्ष्य में रख कर समझ सकते है । महर्षि दयानन्द केवल वेदों को स्वतःप्रमाण मानते थे और इसीलिए वे यह चाहते थे कि जितने पिछले ५००० वर्षों में वैदिक धर्म के अतिरिक्त दूसरे मत मतांतर प्रचलित हुए है । वे अपने असली प्राचीन स्वरूप को समझकर दूसरों से मिलकर कार्य करना सीखें । उनकी नीति merger की थी extinction की नहीं । सबको मिलाना चाहते थे, मिटाना किसी को नहीं और यह जब ही सम्भव हो सकता है कि जब वेद जो सबसे प्राचीन धर्म पुस्तक है वह सबको मान्य हो । महर्षि ने यह सत्यार्थ प्रकाश में सिद्ध किया है कि जो मतों में सच्ची बातें है वे सब वेदों से सम्बन्धित है उनमें देश और काल के प्रभाव से नवीन काल्पनिक बातें सम्मिलित हो गई हैं । उनको निकाल देने से यह उनके स्वरूप परिवर्तन से वे सब मत एक विशाल धर्म के रूप में संगठित हो सकते है । महर्षि के उपरोक्त उद्देश्य को पंडित गंगाप्रसाद उपाध्याय जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक fountain head of regligion में अर्थात धर्म के आदि श्रोत में भली-भांति युक्ति और प्रमाण से सिद्ध किया है ।

बिजली घर

सम्प्रति यह विद्युत का युग है । बिजली का चमत्कार कई प्रकार से दृष्टिगोचर हो रहा है । विद्युत के प्रयोग को सफल बनाने के लिए निम्न लिखित अंग आवश्यक होते है:-

१) Power House या बिजली घर, जहां बिजली का उत्पादन हो ।

२) Distributing Wires अर्थात् विद्युत को पहुँचाने के साधन ।

३) Fitting अर्थात् जहां बिजली का प्रयोग होना है उसके लिये तैयारी ।

४) Connections अर्थात् Fitting हो जाने के बाद Power House से सम्बन्ध जोड़ना ।

५) Utilisation अर्थात् बिजली को प्रयोग में लाना ।

६) Precaution अर्थात् त्रुटि से बचाना और इस प्रक्रिया को समझ लेने से आर्य समाज का और वैदिक धर्म का स्वरूप भली भाँति समझ में आ सकता है । ईश्वर और वेद Power House है । उनका पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना विस्तार के साधन है, शिक्षा, संस्कार और यज्ञ fitting हैं । योग का अभिप्राय Connection है । योग से व्यवहारिक जीवन में लाभ उठाना अर्थात् ईश्वर को व्यापक और न्यायकारी समझकर कार्य करना इस ज्ञान का प्रयोग में लाना है । चरित्र दोप से बचे रहना precaution है अर्थात् सुरक्षा है । यदि हम इस दृष्टि कोंण से आर्य समाज और वैदिक धर्म को समझें तो हम प्राचीन वेदों के प्रकाश को समझ सकेंगे और रूढिवाद, अंधविश्वास वंश परम्परा और 'होली आई है' नाम की त्रुटियों से सुरक्षित रहेंगे ।

विचार, आचार और व्यवहार

मनुष्य जीवन की सारी प्रक्रिया उपरोक्त

तीन अंगों में विभाजित समझी जा सकती है। विचार जीवन के निर्वाह की प्रक्रिया के आधार भूत है। विचारों का जहाँ तक अपने से सम्बन्ध है उनका नाम आचार है। जहाँ दूसरों से भी सम्बन्ध है उनका नाम व्यवहार है। महर्षि दयानन्द विचारों को शुद्ध, आचार को पवित्र और व्यवहार को मयादित चाहते थे। महर्षि ने विचारों की शुद्धता के लिये सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका का निर्माण किया। आचार की पवित्रता के लिये सत्यार्थ प्रकाश में भी बल दिया है और संस्कार विधि और पञ्चमहायज्ञ विधि इत्यादि तो आचार को पवित्रता के ही लिये है। और व्यवहार भानु नाम को पुस्तक तो व्यवहारों को मर्यादित करने के लिये हो लिखी गई है।

महर्षि का समाज निर्माण

हमने इससे पूर्व यह दर्शाने का यत्न किया है कि महर्षि को दृष्टि में व्यक्ति का निर्माण समाज निर्माण का मुख्य आधार है और व्यक्तियों के उत्थान के लिये ईश्वर को आदिभूत मानना वेदों का स्वाध्याय मुख्य साधन है। समाज के निर्माण के लिये भी ऋषि दयानन्द ने एक विशेष रूप रेखा निर्धारित की है। इस रूप रेखा को हम वर्ण और आश्रम व्यवस्था से प्रगट कर सकते है।

कार्य विभाजन की दृष्टि से सारा मनुष्य समाज चार वर्णों में विभाजित रहेगा। अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र। अज्ञान, अन्याय और अभाव मनुष्य जीवन के लिये और मानव समाज के लिये महान् क्लेश है। जो व्यक्ति अपने को अज्ञान के निराकरण के लिये तैयार करेंगे और योग्यता प्राप्त करेंगे वे ब्राह्मण वर्ण के होंगे, जो अन्याय के निराकरण के लिए तैयार होंगे वे क्षत्रीय और अभाव के निराकरण के लिये तैयार होने वाले वैश्य और तीनों को सहयोग देने वाले शूद्र। वर्ण शब्द से अभिप्राय है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छा और योग्यता के आधार पर कर्त्तव्य चुन लेने का अधिकार है। जन्मादि का कोई प्रतिबन्ध उसके लिये नहीं है। इस वर्ण की मर्यादा के प्रचलित न रहने से जन्म के आधार पर जातिवाद प्रचलित हुआ। और चार वर्णों के स्थान में हजारों उपजातियाँ प्रचलित हो गई जिसके कारण विवाह और खान-पान में बड़ी उलझने पड गई और अछूतपन का कलंक भी उसका ही एक परिणाम है और इसीलिये महर्षि को और उसके पश्चात् आर्य समाज को जन्म सूचक जातिवाद का प्रबल विरोध करना पड़ा। आश्रम मर्यादा भी उतनी ही आवश्यक है जितनी की वर्ण की मर्यादा। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास चार आश्रम बताए गये है। ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रत्येक देश के बालक और बालिका को स्वास्थ्य, मानसिक उन्नति, और आत्मिक उन्नति के दृष्टिकोण से तैयार किया जाता है। और गृहस्थ में विवाह और व्यवसाय के लिये मर्यादाये स्थापित की गई हैं। गृहस्थ के पश्चात् वानप्रस्थ आश्रम का समय पुनः तैयारी के लिये है। सन्यास आश्रम विश्व के उपकार के लिये आवश्यक बताया गया है। यदि उपरोक्त चार प्रकार से मनुष्य का जीवन विभाजित रहे तो केवल गृहस्थ आश्रम के ही २५ वर्ष ऐसे है जहां धनोपार्जन की आवश्यकता और सन्तानोत्पति की आज्ञा है। यदि वह मर्यादा वास्तविक रूप में प्रचलित हो जावे तो वर्तमान जगत् की सब समस्याओं का समाधान हो सकता है। व्यवसायों का संघर्ष, संतति निरोध के कृत्रिम उपाय आदि कलंक मिट सकते है।

आर्य समाज की सफलता

अब तक जो ऊपर लिखा गया है उससे आर्य समाज और वैदिक धर्म का स्वरूप समझ में कुछ सुविधा से आ सकता है और उसके ही आधार पर हम कुछ आगे विशेष प्रसंग में प्रकाश डालने का यत्न करेंगे। सबसे पहिले हम समाज निर्माण और व्यक्ति निर्माण के क्षेत्र को लेना चाहते हैं।

शिक्षा

शिक्षा के सम्बन्ध में महर्षि ने निम्न लिखित बातों पर बल दिया है :- १) शिक्षा के आरम्भ का समय माता का गर्भ। २) शिक्षा सर्वाङ्गपूर्ण, धार्मिक शिक्षा आवश्यक अङ्ग, ब्रह्मचर्य पालन अनिवार्य है। ३) शिक्षा का निःशुल्क होना अर्थात् शिक्षा की व्यवस्था राज्य के द्वारा होनी चाहिये। व्यक्तियों पर उसका भार न हो। ४) सिक्षा अनिवार्य होनी चाहिये। ५) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिये। ६) शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिये कि शिक्षा पाने वाले रोटी के झंझट से और दुनियादारी के प्रभाव से मुक्त रहें। शिक्षा प्राप्ति की अवधि भी सुरक्षित रहें। ७) सह-शिक्षा का विरोध अर्थात् बालक और बालिकाओं की शिक्षा पृथक स्थान और विधि से होनी चाहिये।

ऋषि के वल देने और आर्य समाज के यत्न से ऊपर के जो शिक्षा के अंग हैं उनमें से दो को छोड़ कर शेष किसी अंश तक अपना लिये गये हैं और जहाँ तक अपना लिये गये है शिक्षा के जगत् में कुछ उजाला दिखाई देता है। धार्मिक शिक्षा की अवहेलना हो रही है और सहशिक्षा की त्रुटियों की ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इन दोनों के ही परिणाम बड़े भयंकर हैं। धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता भी अब कुछ-कुछ अनुभव होने लगी है, परन्तु धार्मिक शिक्षा क्या स्वरूप हो अभी निश्चय नहीं हो पाया। भगवान् को भूलकर इन्सान को शिक्षित बनाना चाहते हैं जो सम्भव नहीं। महर्षि भगवान् को आदर्श मानकर ही शिक्षा और समाज निर्माण की मर्यादा बनाना चाहते है।

सामाजिक संगठन

जैसा ऊपर बताया गया है महर्षि जन्म की जातियों का निराकरण चाहते थे और

वर्णों की स्थापना । उनके आन्दोलन को इस अंश तक सफलता मिली है कि जन्म-सूचक जातियों का कोई स्थान या मान्यता भारत के विधान में नहीं है । महर्षि ने जातिवाद का निराकरण किया । महात्मा गाँधी ने उसे समझा और उस पर बल दिया । महात्मा गाँधी के प्रभाव से कांग्रेस ने स्वीकार किया और आज भारत के विधान का अंग हो गया है, परन्तु जहां तक विधान है वहां तक ऋषि की विजय की छाप है । व्यवहार और निर्वाचन इत्यादियों में जन्म को जातियों को मान्यता नहीं छोडी गई है और उसका ही भयंकर परिणाम आज परस्पर की फूट और मतभेद है । यह कहना बिल्कुल उपयुक्त है कि यदि महर्षि की बात सर्वाङ्गपूर्ण नहीं मानी जायगी तो पूर्ण सफलता नहीं हो सकती । इसी प्रकार अछूतपन के कलंक की बात है । महर्षि के आन्दोलन के परिणाम स्वरूप और आर्य समाज के प्रचार के कारण अछूतपन का कलंक अमान्य हो गया और त्याज्य माना जाने लगा । भारत के विधान में भी उसको स्थान मिल गया है, परन्तु ऋषि की विजय तो इस सम्बन्ध में भी स्पष्ट है, उनके आदेश को व्यावहारिक रूप से पालन करने का स्वभाव अभी नहीं बना है इसिलिये यह अछूतपन की बीमारी कभी-कभी और किसी-न-किसी रूप में प्रगट होती रहती है । यह कहने को विवश होना पड़ता है कि महर्षि और आर्य समाज की चेतावनी को व्यावहारिक रूप से मानो नहीं तो हानि से पूर्ण रूप से छुटकारा नहीं हो सकेगा । यह भी इस स्थल पर प्रगट कर देना आवश्यक है कि केवल जन्म-सूचक जातियों का बहिष्कार पर्याप्त नहीं है, वर्ण की स्थापना भी अब अनिवार्य है । इस ओर तो अभी व्यावहारिक रूप से बिल्कुल ही ध्यान नहीं जा सका है । स्वराज्य है और इस ओर भी ध्यान जाना आवश्यक है ।

विवाहों के सम्बन्ध में

समाज सुधार के अन्तर्गत महर्षि ने बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह का विरोध किया । अन्तर्जातीय विवाहों पर बल दिया । आवश्यकता होने पर विधवा विवाह को उपयोगी बताया । आज महर्षि के प्रभाव से बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और अनमेल विवाहों के पक्ष में कोई समझदार आदमी दिखाई नहीं देता । विधवा विवाह भी प्रचलित हो गया है । ऊपर लिखे अनुसार विवाहों के सम्बन्ध में महर्षि की विचार धारा की बहुत कुछ विजय है परन्तु एक बडी कठिनाई है । महर्षि दयानन्द विवाह को एक धार्मिक कृत्य और संस्कार मानते थे इसिलिये धार्मिक दृष्टिकोण से उन्होंने तलाक प्रथा का विरोध किया और बाल ब्रह्मचारी होते हुए भी स्त्री और पुरुष के सम्पर्क का धार्मिक दृष्टिकोण के आधार पर काम वासना की मर्यादा के लिये बहुत स्पष्ट रूप में उल्लेख किया है । आज विवाहों का नाम मात्र का धार्मिक स्वररूप है । और उन पर केवल दुनियादारी की दृष्टि में विचार किया जा रहा है । विवाहों में दहेज इत्यादि की कुप्रया इसका ही परिणाम है और कृत्रिम संतति निरोध का प्रचार भी इसी मनोवृत्ति का एक स्वरूप है ।

आर्य जाति का संगठन

आर्य जाति के संगठन को दृढ़ बनाने के लिये उन्होंने वर्तमान संस्था की सुरक्षा के लिये दलित उद्धार का आन्दोलन चलाया, अछुतपन के कलंक को मिटाने का यत्न किया, जन्म-सूचक जातिवाद का बहिष्कार किया और गई हुई पूंजी को वापिस लाने के लिये शुद्धि का आन्दोलन चलाया । महर्षि के संगठन सम्बन्धी आन्दोलन का जहाँ तक दलितों का सम्बन्ध है बड़ा स्वागत हुआ । शुद्धि के आन्दोलन में भी बड़ी सफलता मिली । शुद्धि का कुछ विरोध केवल कांग्रेस दल के कुछ सज्जन हिन्दू-मुस्लिम एकता के नाम पर करते रहे है । महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी दोनो हिन्दू-मुस्लिम एकता के पोषक थे । ऋषि दयानन्द दोनों को वास्तविक रूप में एक बनाना चाहते थे । महात्मा गांधी दोनों को पृथक रहने देते हुए उनमें एकता चाहते थे, जो असाध्य नहीं कष्टसाध्य जरूर रहा । यदि ऋषि दयानन्द का आन्दोलन नहीं होता तो सिर पर चोटी रखने वाले और जनेऊ पहिनने वाले हिन्दुओं की संस्था और भी कम होजाती ।

स्वराज्य

ऋषि दयानन्द पूर्ण रूप से देश भक्त और स्वराज्य प्राप्ति के समर्थक थे । उन्होंने सन् १८७५ ई. में स्वराज्य शब्द का प्रयोग किया और इस बात पर बल दिया कि स्वराज्य प्राप्ति भारत-निवासियों का जन्म सिद्ध अधिकार है । और उन्होंने यह भी बताया कि विदेशी राज्य कितना ही अच्छा हो स्वराज्य की अपेक्षा कभी माननीय नहीं हो सकता । जब महर्षि ने आन्दोलन आरम्भ किया उस समय देश में कोई राजनैतिक आन्दोलन नहीं था । कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ में हुई । ऋषि दयानन्द केवल स्वराज्य के पोषक न थे, ये प्रजातन्त्र प्रणाली के भी समर्थक थे । उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में स्पष्ट लिखा है कि राजा या सभापति निर्वाचित होना चाहिये । राजा सभाओं के आधीन हो, सभायें राजा के आधीन हो और दोनों पर प्रजा का अंकुश हो । महर्षि के आरम्भ किये हुए स्वराज्य आन्दोलन को देश के नेताओं ने सफल बनाने का यत्न किया । महात्मा गाँधी ने उसको पूर्ण रूप से अपनाया और सत्याग्रह आन्दोलन चलाया । सत्याग्रह आन्दोलन में भी आर्य समाजियों ने व्यक्तिगत रूप से आर्य समाज की प्रेरणा से खुलकर भाग लिया और ईश्वर की कृपा से स्वराज्य प्राप्त हुआ । स्वामी दयानन्द प्रजातन्त्र प्रणाली को जिस रूप में सफल बनाना

चाहते थे उस पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है और उसका ही यह पिरणाम है कि परस्पर कलह बढ़ रही है और स्वराज्य आ जाने पर भी भ्रष्टाचार में वृद्धि हो रही है। प्रजातन्त्र प्रणाली की कीली वोट या सम्मति है। यदि वोट का सद्प्रयोग होगा तो राज्य की व्यवस्था मर्यादित रहेगी। ऋषि दयानन्द वोट के अधिकार से किसी को वञ्चित नहीं करना चाहते थे परन्तु वे वोट को केवल गणना की ही वस्तु नहीं मानते थे वे उसको तोलना चाहते थे। उन्होंने दो बातें बड़ी स्पष्ट लिखी है। एक यह कि सौ मूर्खों की न मान कर केवल दस विद्वानों की माननी चाहिये और दस विद्वानों के मुकाबले पर एक ऋषि की माननी चाहिये। दूसरी बात यह कि वोट का अधिकार केवल सदाचारी को ही मिलना चाहिये। वोट कहीं शिक्षा से सम्बन्धित है, कहीं सम्पत्ति की मात्रा से, कहीं दोनों से। भारत में तो केवल आयु के आधार पर वोट मिल गई है। यदि सदाचार का ध्यान वोटर्स बनाते समय और वोट माँगते और देते समय रहे तो देश की राजनीति राज्य धर्म का रूप धारण कर लेगी और स्वराज्य के साथ सुराज्य की भी प्राप्ति हो सकेगी। महर्षि ने प्रत्येक व्यक्ति को एक राष्ट्र के रूप में चित्रित किया है। हृदय को राजधानी मानकर, परमात्मा को सम्राट मानकर, जीवात्मा को मुख्यमन्त्री का सम्मान दिया है। मन गृहमन्त्री है। ज्ञान इन्द्रियां और कर्म इन्द्रियाँ प्रजा है। ऋषि ने क्या सुन्दर लिखा है, ''जिनकी अपनी अन्तरिक प्रजाओं पर प्रभाव डालने की सामर्थ्य नहीं है, वह बाहर की दुनियां का प्रबन्ध क्या कर सकते हैं ?'' ऋषि दयानन्द के इस आदेश को जानने, समझने और मानने की परम आवश्यकता है। इसके समझ लेने से ही स्वतन्त्रता प्राप्ति का स्वप्न और अभिलाषा पूर्ण होगी। ऋषि दयानन्द ने वेदों और मनु के आधार पर शपथ की प्रथा पर बल दिया है। आज शपथ का प्रचार तो बहुत है, विधान का अंग भी है, परन्तु वह केवल होठों तक है और कागज तक है। हृदय में उसका प्रवेश नहीं है। इसलिये बेईमानी, भ्रष्टाचार इत्यादि बढ़ रहे हैं।

राष्ट्र-भाषा

ऋषि दयानन्द की यह धारणा दी कि प्रत्येक राष्ट्र में एकता की सुरक्षा के लिये एक राष्ट्र-भाषा होनी चाहिये। ऋषि दयानन्द की मातृ-भाषा गुजराती थी और ये संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् थे। वे १८७१ या १८७२ तक तो बहुधा संस्कृत के माध्यम से ही प्रचार करते रहे। देश हित के लिये उन्होंने हिन्दी को अपनाया, उन्होंने उसको राष्ट्र-भाषा का स्थान दिया। महात्मा गांधी उसके पोषक हुए। महात्मा गांधी के प्रभाव से कांग्रेस ने उसको अपनाया और आज वह भारत के विधान का आवश्यक अंग है। जितना इस आदेश की अवहेलना हो रही है उतनी ही देश की हानि हो रही है। ऋषि की विजय पर कोई सन्देह नहीं।

पशु रक्षा और गौ रक्षा

ऋषि दयानन्द जिस धर्म का प्रचार करना चाहते थे वह किसी देश विशेष तक सीमित नही, वह विश्वधर्म के रूप में प्रचलित किया गया। उसका क्षेत्र केवल मानव नहीं परन्तु प्राणिमाण है। महर्षि ने पशु रक्षा पर बल दिया, विशेष रूप से परम उपयोगी पशु गौ की रक्षा पर बल दिया। 'गौ करुणानिधि' नाम की पुस्तक लिखी और वह लाखों दस्तखतों से गौ रक्षा के लिये तत्कालीन सरकार के पास प्रार्थना पत्र भेजना चाहते थे। जीवन चरित्र से पता चलता है कि बहुत बड़ी संख्या में दस्तखत हो चुके थे जिसमें कुछ अन्य मत वाले भी शामिल थे। उनके रोगी हो जाने के कारण वह कार्य पूरा ही नहीं हो सका, आज महर्षि के गौ रक्षा आन्दोलन को यह विजय है कि भारत के विधान में गौ रक्षा सम्बन्धो एक धारा सम्मिलित की गई है। दुःख इस बात का है कि न तो पूर्ण रूप से गौरक्षा की व्यवस्था की जा रही है और न अन्य पशुओं की रक्षा पर कोई ध्यान है। आज मुर्गी, अण्डे और मछलियाँ अनाज को तरह खाने की वस्तुएँ मानी जाने लगी है। और इस भूल का ही यह भयंकर परिणाम है कि उत्पादन बढ़ाने का यत्न करने पर, बाहर से अनाज मांगने और मंगाने पर भी पेट नहीं भर रहे हैं। रोटी के लिये हाय-हाय हो रही है। इन गरीब पशुओं पर अत्याचार का ही यह परिणाम है कि भयंकर दैनिक आपत्तियां बाढ़, भूकम्प आदि के रूप में नित्य प्रति सामने आरही हैं। पेट भरना केवल अर्थ-शास्त्र का प्रश्न नहीं है यह भक्ष्य और अभक्ष्य की दृष्टि से धर्म का प्रश्न है, यदि इस धर्म के प्रश्न का समाधान महर्षि के आदेश के अनुसार धार्मिक दृष्टिकोण से होगा तभी पेट भरने की समस्या पूरी हो सकती है। दुःख इस बात का है कि वर्तमान सरकार अपने को धर्म निरपेक्ष घोषित करती है परन्तु जब धार्मिक प्रश्न सामने आते है तो उनको धर्म की दृष्टि से न सुलझा कर केवल अर्थ-शास्त्र और दनियादारी की दृष्टि से सुलझाने का यत्न करते हैं। जितना उनका उपाय होता है, उपरोक्त मौलिक भूल के कारण उतना ही परिणाम दूषित होता है। यदि ऋषि दयानन्द केवल एक छोटी पुस्तक **गौ करुणानिधि** को राज्य की ओर से मान्यता दी जाए तो आज अर्थ का संकट भी दूर हो जावें और प्राणीमात्र की रक्षा भी। अन्य प्राणियों कि रक्षा के साथ ही मनुष्य सुरक्षित रहने की आशा कर सकता है दूसरों को मारकर चैन से नहीं जी सकते। और ऐसे ही उल्टे उपाय सोंचने पडेंगे कि बच्चे न होवें।

मद्यपान निषेध

स्वामी दयानन्द सबसे पहिले सुधारक

है जिन्होंने नशा करने को और शराब पीने या भांग पीने को व्यक्ति और देश के लिये हानि-कारक समझा और उसका निषेध किया। आर्य समाज की वेदी से आरम्भ में ऐसे भजन गाए गये, "मत पियो शराब पागल कर देती है," महर्षि को यहां तक सफलता मिली कि महात्मा गान्धी ने उसका समर्थन किया। कांग्रेस ने अङ्गरेजी राज्य के समय में मद्यपान का घोर विरोध किया। दुकानों का पिकेटिंग कराया। विधान में भी मद्यपान निषेध को स्थान दिया गया है, परन्तु महर्षि की सफलता भली प्रकार सफल नहीं हो सकी क्योंकि राष्ट्र के वर्तमान संचालकों ने केवल अर्थ की और ध्यान दिया। रुपया इकट्ठा करने की सूझी। इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया कि रुपया धर्म को मर्यादा से आता है या अधर्म की मर्यादा से। आज महात्मा गान्धी की जय बोलने वाले, गांधी टोपी पहनने वाले बिना शराब की बिक्री की आर्य के राष्ट्र के संचालन की व्यवस्था नहीं कर सकते। शराब बिकवाने से, शराब पीने से बुद्धि दूषित, मन अपवित्र और शरीर अस्वस्थ रहता है। इसलिये राजा और प्रजा के सब काम उल्टे हो रहे हैं। पाप की कमाई पर ध्यान है। पाप की कमाई से पाप की वृद्धि हो रही है और पाप की वृद्धि से सुख का नाश और दुःख की वृद्धि हो रही है। यदि ऋषि दयानन्द और महात्मा गाँधी की चेतावनी भी इन राष्ट्र के संचालकों को और भारत की दुखित प्रजा को सचेत न कर सकी तो इन्हें कौन जगायेगा ? ऋषि दयानन्द की सफलता को सच्ची सफलता बनाना चाहिये और उनके आदेश का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिये।

अछूतपन का कलंक

इससे पूर्व यह दर्शाया गया है कि संगठन को दृढ़ बनाने के लिये और आर्य जाति की सुरक्षा के लिये स्वामी दयानन्द ने अछूतपन के कलंक को मिटाना आवश्यक समझा। ऊपर यह भी बताया गया है कि ऋषि के इस आदेश को कांग्रेस वालों ने और अन्य दलवालों ने भी मान्य समझा, परन्तु इसमें भी एक मौलिक भूल हो रही है, उसकी ओर ध्यान दिलाना बड़ा आवश्यक है। स्वामी दयानन्दका पक्ष यह था कि न कोई छूत है न अछूत, न कोई बडा और न छोटा। वे यह सिद्ध करते थे कि मनुष्य को अछूत मानना पाप है और वे सबको समान अधिकार बिना किसी प्रतिबन्ध के दिलाना चाहते थे। कांग्रेस ने इसको अपनाया, परन्तु अर्थ शास्त्र और राजनीति के दूषित चक्र में आकर यह भूल कर बैठे कि अछूतों को अछूत मानते हुए उनकी पृथक गणना कर बैठे और उनको विशेष सुविधायें मिलने लगीं। मनोविज्ञान की दृष्टि से इसका परिणाम बड़ा दूषित भविष्य में सिद्ध होगा। अछूतपन की भावना बनी रहेगी और उसका लिखित प्रमाण उपलव्य रहेगा। अब आगे चलकर सुविधायें मिलना कम हो जायेंगी या अन्त हो जायेंगी तो फिर यह भूल सामने आ जायगी। आवश्यकता यह थी कि शिक्षा आदि के क्षेत्र में और सब सामाजिक क्षेत्रों में हर प्रकार के प्रतिबन्धों को हटाकर सबको उन्नति का समान अवसर देते और फिर योग्यतानुसार व्यवस्था करते। यत्न यह होना चाहिये था कि अछूतपन के कलंक को भूला जावे। सब सुविधाओं की आड़ में भूलने के स्थान में उसका जाप होने लगा। कहीं-कहीं और कभी-कभी तो अछूतों को सुविधायें मिलते हुए देखकर जो अछूत नहीं है वे भी अछूतों में सम्मिलित होना चाहते हैं। विधान से अछूतपन मिटाने का यत्न हो रहा है। क्रियात्मक रूप से उसकी सुरक्षा की व्यवस्था हो रही है। यह बात बढ़ी कड़वी है जिनको सुविधा न मिल रही है वे इससे अप्रसन्न होंगे और राष्ट्र के संचालक भी अपनी भूल स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि सुविधा देने से ही करोड़ों का वोट सुरक्षित समझा जाता है।

महिलाओं का अधिकार

ऋषि के अनेक उपकारों में स्त्री-जाति का उपकार भी विशेष महत्त्व का है। महर्षि दयानन्द ने स्त्री-शिक्षा पर बल दिया। उनको हर प्रकार के धार्मिक अधिकार दिलाने का यत्न किया और उनकी दशा को हर दृष्टि से उन्नत बनाया। आज महिलाओं के जगत में ऋषि के प्रचार की विजय की पताका खूब लहरा रही है। अब न स्त्रियाँ अवला रही है और न उनकी राजनीति या धर्म के किसी अधिकार से वंचित रखा गया है। इस प्रसंग में भी इस विजय के साथ एक चेतावनी देने की आवश्यकता है। महर्षि ने जहाँ स्त्रियों की शिक्षा पर बल दिया और उनको हर प्रकार से योग्य बनाने का यत्न किया उसके साथ-साथ उन्होंने स्त्रियों के कर्त्तव्य क्षेत्र को भी निर्धारित किया। परिवार निर्माण और सन्तति का उत्थान उनका मुख्य कर्त्तव्य बताया। आज देखा यह जा रहा है कि महिलायें पढ़कर परिवार की सुरक्षा पर ध्यान न देकर मर्दों के साथ राजनीति और अर्थ-शास्त्र के अखाड़े में कूद पड़ी हैं। इससे राष्ट्र के निर्माण में बाधा पड़ने की बड़ी सम्भावना है। यदि घर बिगड़ गये तो न ग्राम सुधरेंगे और न शहर और न राज्य की व्यवस्था ठीक होगी। महर्षि महिलाओं की पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्ष में थे परन्तु स्वतन्त्रता की सुरक्षा के साथ-साथ परिवारिक और धार्मिक सुरक्षा भी चाहते थे। आज इस क्षेत्र में भी सीमा का उल्लंघन हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि फुटबाल मैच में गोल कीपर फार्वर्ड खिलाड़ी के खेल को देखकर गोल को अरक्षित छोड़कर आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहा है। जिससे पराजय की सम्भावना बढ़ सकती है।

दान की मर्यादा

भारतवर्ष में दान की मात्रा में कमी

नही है। करोड़ो और लाखों रुपया दान में दिया जा रहा है, परन्तु इस दान की प्रणाली को दूषित देखकर ऋषि दयानन्द को इस ओर भी ध्यान देना पड़ा। महर्षि ने परोपकार की परिभाषा भी की है उन्होंने बाताया है कि परोपकार वह है जिससे पुरुषार्थ में वृद्धि हो। जिस परोपकार या दान से पुरुषार्थ कर सकने वालों को पुरुषार्थ न करने का बहाना मिले वह उपकार नहीं अपकार है इसमे देशको हानि पहुँचती है। लाखों साधुओं को, मन्दिर के पुजारियों और पोपों को जो दान दिया जाता है उसमें यही दोष है। इसलिये इसका निषेध किया गया है। जिनके स्वार्थ को ठेस लगती है वे ऋषि के इस प्रकार के खण्डन से रुष्ट होते है, परन्तु यह उनकी भूल है। दान की मर्यादा के सम्बन्ध वे महर्षि की चेतावनो बडी आवश्यक थी और है। पुरुषार्थ जो नहीं कर सकते जैसे अनाथ और अपाहिज इत्यादि या जिनको पुरुषार्थ करने का अवकाश नहीं है जैसे सन्यासी और महात्मा केवल उनको ही दान मिलना चाहिये। दान के सम्बन्ध में स्वार्थ सिद्धि की भावना भी दूषित है। दान देकर पाप से बचने की आशा करना या परलोक में लाभ प्राप्त करना यह सब दूषित विचार है। दान करने से और वह भी गलत तरीके से दान करने से पाप दूर नहीं होता बल्कि वह भी पाप का एक रूप हो जाता है। ऋषि का यह भी एक बड़ा उपकार है कि उन्होंने दान के सम्बन्ध में पथ प्रदर्शन किया।

विवाह और व्यवसाय

गृहस्थ आश्रम के दो मुख्य अंग है। विवाह और व्यवसाय। विवाहों के सम्बन्ध में ऊपर विचार किया जा चुका है। इस स्थल पर केवल वह प्रकट करना आवश्यक है कि विवाहों के सम्बन्ध में भी एक भूल यह हो रही है कि प्रौढ़ विवाह चल पड़े है अर्थात् बड़ी उम्र तक स्त्री और पुरुष किसी-न-किसी बहाने से अथवा शिक्षा के बहाने से विवाह नहीं करते और ब्रह्मचर्य का पालन भी नहीं कर सकते जिससे राष्ट्र की अधिक हानि हो रही है जैसे बाल विवाहों से थी। व्यवसाय के सम्बन्ध में महर्षि ने इसी बात पर बल दिया कि व्यवसाय में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नही होना चाहिये और विदेश की यात्रा में भी संकोच नहीं होना चाहिये। आर्य समाज के प्रचार से पूर्व विदेश यात्रा करने पर जाति से च्युत किया जाता था। अब विदेश यात्रा इतनी सरल और सुगम हो गई है कि कोई आक्षेप का प्रश्न नहीं रहा। यह ऋषि की विजय है। व्यवसायों के सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द ईमानदारी और सच्चाई का प्रचार चाहते थे। उन्होंने 'व्यवहारभानु' नाम की पुस्तक लिखी। यदि आज 'व्यवहारभानु' नाम की पुस्तक का प्रचार होता और उसका पालन होता तो अर्थ शास्त्र के जगत में जो भष्टाचार और अनैतिकता फैल रही है उसका अन्त हो जायगा। आज व्यापार की वृद्धि पर ध्यान है व्यवाहर की पवित्रता पर नहीं। और इसका ही दूषित परिणाम है कि व्यवसाय बढ़ते है लाभ नहीं बढ़ता। आय बढ़ती है तृप्ति नहीं होती। कवि अकबर ने एक शेर लिखा है।

तालीम का जोर इतना तहजीब का शोर इतना बर्कत जो नहीं होती नीयत की खराबी है।''

नीयत की खराबी को दूर करने के लिए धार्मिक भावना पर बल देने की आवश्यकता है। कुशल व्यापारी को ईमानदार होना आवश्यक है। ऋषि की विजय, अर्थ के जगत में जब पूर्ण होगी तब पूर्ण पुरुषार्थ के साथ-साथ सच्चाई और ईमानदारी का समावेश होगा।

धार्मिक क्षेत्र

जैसा ऊपर प्रगट किया गया है, महर्षि दयानन्द का सारा कार्य धार्मि दृष्टिकोण से ही था और उनकी धर्म की परिभाषा इतनी विख्यात थी कि राजनीति और समाज सुधार इत्यादि के सब प्रश्न उसके अन्तर्गत आ जाते है। धर्म के सम्बन्ध में जैसा ऊपर बताया गया है ऋषि का दृष्टिकोण विशेष था। जिसे हम प्राचीनता का प्रेम, तर्क का समावेश और धर्म के व्यावहारिक रूप के नामों से सम्बोधित कर सकते हैं।

सत्य सनातन वैदिक धर्म

महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि मैं सत्य सनातन वैदिक धर्म को मानता हूँ। मेरी वही मान्यतायें है जो ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषियों की थी। मैं किसी नवीन मत का प्रचारक नही हूँ। ऋषि के इस प्रचार का यह परिणाम हुआ कि प्रचिलित हिन्दू धर्म वालों को भी अपने आपको सनातन धर्मी घोषित करना पड़ा। इससे यह बात सिद्ध हो गई कि केवल वही धर्म मान्य है जो सनातन है। नवीनता को, धर्म में कोई मान्यता नहीं है। जैनी और बोद्ध भी अपने को प्राचीन सिद्ध करने का यत्न करने लगे हैं। वेदों के सम्बन्ध में जो ऋषि की मान्यतायें थी अर्थात् वेद ईश्वरीय ज्ञान है। सृष्टि के आदि में उनका प्रादुर्भाव हुआ। इस बात को भी अब अनेक विचारक सत्य मानने लगे है। कम-से-कम इस बात पर सब सहमत है कि केवल प्राचीन धर्म ही सत्य हो सकता है परन्तु जहाँ प्राचीनता को मान्यता दी वहाँ प्राचीनता की जांच के लिए तर्क रूपो एक अचूक कसौटी प्रस्तुत की और ऋषि दयानन्द से पूर्व धर्म में बुद्धि का समावेश मान्य नहीं था, इसलिए महर्षि ने प्राचीनता के साथ तर्क पर बल दिया।

तर्क का महत्व

ऋषि ने जो तर्क को महत्व दिया वह इस से विदित है कि आर्य समाज के नियमों में सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने के लिए उद्यत होना आवश्यक समझा। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक

सत्यार्थ प्रकाश को प्रश्न और उत्तर के रूप में लिखा है। यह एक अनोखी बात है। प्रथम दस समुल्लासों में अपने प्रतिपादित मन्तव्यों पर स्वयं प्रश्न लिखकर तर्क को प्रोत्साहित किया है और इसी प्रकार आखीर के चार समुल्लासों में दूसरों पर प्रश्न किये हैं। उनकी यह प्रश्न और उत्तर की प्रणाली बढ़ी शिक्षाप्रद है। इस अंश में भी ऋषि को पर्याप्त विजय प्राप्त हुई है। अब हर मत वाले अपनी धारणाओं का किसी-न-किसी प्रकार तर्क से सिद्ध करना चाहते है और यह कहने का साहस नहीं करते कि उनके सिद्धान्तों के सम्बन्ध में कोई तर्क नहीं उठाया जा सकता। अब तो भक्ति मार्ग वाले भी तर्क का सहारा लेने लगे हैं। जहाँ तक तर्क के समावेश का सम्बन्ध है ऋषि को पर्याप्त विजय मिली। परन्तु तर्क के प्रयोग में जो भावना होनी चाहिए उसमें अभी कसर है। यदि तर्क कुशाग्र बुद्धि से काम में लिया गया तो धार्मिक जगत का मतभेद मिटने की सम्भावना हो सकती है।

धर्म का क्रियात्मक जीवन से सम्बन्ध

महर्षि धर्म का स्वरूप प्राचीनता पर आधारित तर्क से संशोधित और व्यवहारिक जीवन का आधार होना मानते थे। प्राचीनता के प्रेम और तर्क के समावेश पर ऊपर कुछ प्रकाश डाला गया है। यह बात भली-भाँति विदित हो जाती है कि ऋषि के उपरोक्त तीनों स्वरूपों में प्राचीनता और तर्क की आवश्यकता पर पर्याप्त मान्यता प्राप्त हो गई है। अब इस स्थल पर कुछ इस पर विचार करना है कि धर्म के क्रियात्मक जीवन से कहां तक सम्बन्धित होना, सभ्य जगत कहां तक आवश्यक मानने लगा है। महर्षि के आगमन से पूर्व धर्म जीवन का एक प्रथक विभाग था, जीवन से सीधा सम्बन्ध उसका नहीं माना जाता था। विशेष रूप से **मुक्ति से धर्म का सम्बन्ध माना जाता था, दुनियादारी से नहीं। स्वामी दयानन्द ने इस पर बल दिया कि धर्म का जितना सम्बन्ध-मोक्ष प्राप्ति से है उतना ही जीवन से है।** अर्थात् बिना धार्मिक जीवन बनाये और बिताये न इस लोक में सुख प्राप्ति की आशा हो सकती है और न परलोक में। ऋषि के इस प्रकार के आदेश से धार्मिक मनोविज्ञान में एक मौलिक परिवर्तन आ गया है। अब यह बहुत कम मानने को तय्यार है कि केवल ईश्वर का नाम लेकर, भजन करके, गंगा में नहा कर, तिलक लगाकर, कंठी बांधकर पाप क्षमा हो सकते है और मुक्ति की प्राप्ती हो सकती है। यह मानते हुए भी कि रूढ़ीवाद और अंधविश्वास का प्रभाव अभी तक इस भ्रममूलक धारणा के पक्ष में है परन्तु जो विचारक है, समझदार है, उनकी आँखे खुलती जा रही है। तीर्थ की परिभाषा महर्षि ने बड़ी सुन्दर की है। तीर्थ वह है जो पार लगावें, नौका तीर्थ है नदी नहीं। वेदों का ज्ञान धार्मिक जीवन, सच्चे तीर्थ हैं। इनके सहारे से ही भव सागर से पार होने की आशा की जा सकती है।

मूर्ति पूजा

स्वामी दयानन्द केवल एक निराकार ईश्वर की उपासना पर बल देते थे, मूर्ति पूजा के अत्यंत विरुद्ध थे, उनके प्रचार का यह परिणाम है कि मूर्ति पूजा गई तो नहीं परन्तु समझदार लोगों ने मूर्ति पूजा का एक नया संस्करण निकाला है। उनका कहना है कि ईश्वर निराकार है उसकी कोई मूर्ति नहीं होती परन्तु निराकार ईश्वर के सम्बन्ध में ध्यान करने में कठिनाई होती है। इसीलिए किसी मूर्ति के सहारे ध्यान में सुविधा प्राप्त होती है। वह भी भ्रम मूलक है। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि मूर्ति पूजा ईश्वर के ध्यान के सम्बन्ध में सीढ़ी नहीं है, खाईद है। यदि आर्य समाज इस ध्यान लेने की बात को योग दर्शन के आधार पर अधिक स्पष्ट करें और प्रचार करें तो इतना सा भ्रम दूर हो सकता है और मूर्ति पूजा की विधि का अंत हो सकता है।

मृतकों का श्राद्ध

स्वामी दयानन्द ने पञ्चमहायज्ञों में पितृ यज्ञ को एक महान यज्ञ माना है। जीवित माता-पिता और आचार्य आदि को पूज्य माना है उनकी सेवा सत्कार पर बल दिया है। यह सेवा यदि श्रद्धापूर्वक की जाए और पूज्य माता-पिता इत्यादि को तृप्ति कराने के लिए की जाए तो वह तर्पण और श्राद्ध सच्चे अर्थों में माना जा सकता है। दुर्भाग्य से बौद्धकाल के प्रभाव से और अन्य कारणों से मृतक श्राद्ध की प्रथा चल पड़ी और यह धारणा हुई कि मरों के नाम पर ब्राह्मणों को भोजन कराने से मृत आत्माओं को तृप्ति प्राप्त हो सकती है। इस भ्रम मूलक एवं मिथ्या विचार का स्वामी दयानन्द ने प्रबल रूप से खण्डन किया। इस सम्बन्ध में महर्षि के प्रचार को यहां तक सफल समझा जा सकता है कि अब यह धारणा हो गई है कि मुर्दों के नाम पर खिलाने पर मुर्दों का कोई लाभ होता परन्तु रूढ़ीवाद और वंश परम्परा के वशीभूत होकर अब मृतक श्राद्ध का भी एक नया रूप प्रगट होने लगा है और वह यह कि श्राद्ध से स्मृति मनाई जा सकती है। यह भी केवल स्मृति तो उनके आदेश के पालन करने और चरित्र का अनुसरण करने से हो सकता है। ब्रह्म भोज या मित्रों के खाना खिलाने से कोई विशेष स्मृति नहीं हो सकती। सारा खाना खाने और खिलाने पर लगा रहता है। पूर्वजों के कृत्य और व्यवहार पर ध्यान भी नहीं जाता और न ही उनकी चर्चा होती है।

सच्ची गुरु भक्ति

स्वामि दयानन्द सच्चे गुरु की आवश्यकता अनुभव करते थे। प्रचलित भ्रममूलक गुरुडम के घोर विरोधी थे। महर्षि ने ईश्वर को आदि गुरु माना। गायत्री को गुरु मंत्र बताया है। गायत्री

से ईश्वर की आराधना और उपासना करने से ईश्वर आदि गुरु के रूप में उपासक के सम्मुख रहता है। महर्षि ने सच्चे गुरुओं का विरोध नहीं किया। प्रचलित गुरुडम का विरोध किया है।

महर्षि का महत्व

संसार में महत्व को ऊंचाई, गहराई और चौडाई से नापा जाता है। धार्मिक और तत्वज्ञान की दृष्टी महत्व ईश्वर तक, ऊंचाई की दृष्टि से आत्मा तक, चौड़ाई की दृष्टि से प्राणी मात्र तक महर्षि का प्रचार और उनके बनाए हुए आर्य समाज के नियम और उद्धेश्य उनके महत्व को दर्शाति है। वे सच्चे अर्थों में महत्व थे।

संस्कारों की महिमा

रूढ़ी के आधार पर बहुत सी प्रचलित रीतिरीवाज़ों का खण्डन व निषेध किया परन्तु वे १६ संस्कारों को व्यक्ति और समाज निर्माण के दृष्टिकोण से बड़ा आवश्यक समझते थे। इसीलिए १६ संस्कारों पर बड़ा बल दिया है और सचेत किया है कि केवल रूढ़ी रिवाज समझकर संस्कारों को त्याज्य नहीं समझना चाहिए

भ्रष्टाचार निरोध सम्बन्धी आंदोलन

आजकल सारे देश में भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए पुकार मच रही है। इस तृटि को भी स्वामी दयानन्द ने सबसे पहिले अनुभव किया और सन् १८६७ में हरिद्वार में गंगा के तट पर पाखण्ड खण्डनी पताका लगाकर लोग और परलोक सम्बन्धी पाखण्डों के विरुद्ध आंदोलन आरम्भ किया। व्यवहारभानु नाम की पुस्तक इसी उद्देश्य से लिखी। यदि स्वामीजी की इस आवाज पर उसी समय से ध्यान दिया गया होता तो आज यह दुर्दशा नहीं होती। अब समय है कि स्वामीजी के आदेश को पूर्ण करने के लिए आर्य समाज अपनी सारी शक्ति और बल इस कार्य की पूर्ति में लगाएं और देश के अन्य नागरिक आर्य समाज की छत्रछाया में सम्मिलित होकर देश से इस कलंक को मिटाने का यत्न करें। अब इस स्थापना दिवस का यही संकेत और आदेश मानना चाहिए।

करामतों का अंत

ऋषि दयानन्द ने धर्म में तर्क के समावेश पर बल दिया तो उसका यह परिणाम हुआ कि अब कुछ नवीन चमत्कार सुनने में नहीं आ रहे। (इस बीच में चमत्कार करने वाले गुरु जेलों में बंद है) कुछ मुसलमानों का कहना है कि चाँद के दो टुकड़े नहीं हुए केवल देखने का भेद है। इसी प्रकार एक ईसाई ने लिखा है कि थोड़ी सी मछलियों से बहुत से आदमियों का पेट नहीं भरता न भर सकता है। उनका अभिप्राय केवल मनोवैज्ञानिक है। ईसा मसीह के अनुयायी प्रचार कार्य में संलग्न थे। ईसा ने प्रश्न किया खाना खा लिया ? उन्होंने कहा आप इसकी चिन्ता न करे। हम तृप्त हो गए हैं। ऐसी बातों को अब कई लोग नहीं मान रहे हैं।

युग निर्माण

स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना वर्तमान युग में एक विशेष मोड देने के लिए किया था। विश्लेषण की दृष्टि से यह युग चार विभागों में विभाजित समझा जा सकता है :- १) विज्ञान का युग २) स्वतन्त्रता का युग ३) अर्थ शास्त्र का युग ४) निर्माण का युग।

महर्षि दयानन्द इन चारों अंगों को एक नया मोड़ देकर समाज निर्माण को पूर्ण रूप देना चाहते थे। उन्होंने ईमान के युग पर बल दिया। स्वतन्त्रता के साथ आंतरिक अनुशासन पर बल दिया। विज्ञान के साथ ईश्वर के आदि मूल होने की बात पर बल दिया। सामान के उत्पादन के साथ उन्होंने ईमानदारी और नियत पर बल दिया। निर्माण के दृष्टिकोण से सबसे अधिक मानव निर्माण पर बल दिया। आजकल सबसे अधिक भ्रष्टाचार ही है। ऊपर से निचे तक भ्रष्टाचार की वृद्धि पर विलाप चल रहा है यादि स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोण पर ध्यान दिया जाए तो आज वास्तिविक रूप से देश की उन्नति हो सकती है। सुख के साथ शांति के भी हो सकते है।

आर्य समाज का स्वरूप

आर्य समाज वैदिक धर्म प्रचारक सभा है। सुधार का कल्पतरु है। आर्य जाति में नूतन जीवन और जागृति उत्पन्न करने के लिए है। आर्य मान मर्यादा तथा आर्य गौरव गरिमा की रक्षा का एक निम्मित है। संसार के उध्दार के लिए एक संगठित सैनिक संगठन है और सर्वसाधारण को धर्म भावना प्रदान करने के लिए एक सत्संग गंगा का श्रोत है और दीन दुखियों की सहायता के लिए एक सेवक समिति है। आर्य समाज को समझकर उसके उद्देश्य को मान्यता देकर आर्य समाज में सम्मिलित होकर इस आंदोलन को मजबूत करें।

यह दुर्भाग्य है कि कुछ स्वार्थी मनुष्य संस्थाओं से आकर्षित होकर या स्वार्थ सिद्धी के लिए आर्य समाज में प्रवेश आ गए है और अंदर घुसकर उसकी दशा को बिगाड़ रहे हैं। आर्य समाज के शुभचिन्तकों का आर्य समाज में प्रवेश, प्रचार शैली और प्रबन्ध की व्यवस्था पर विचार करना अति आवश्यक है। यदि आर्य समाज के सेवक और अनुयायी स्थापना जीवन के उपलक्ष में इस लेख में लिखी गई सारी बातों को पढ़कर गंभीरता से विचारकर सचेत हो गए तो आर्य समाज का आंदोलन सफल होगा।

हिन्दी-पत्रकारिता को आर्य समाज की देन

-डॉ. भवनानीलाल भारतीय

आर्य समाज को हिन्दी पत्रकारिता को जन्म देने वाली अग्रणी शक्ति स्वीकार कर लिया जाए तो इसमें कोई आपत्ति या अत्युक्ति नहीं होगी। हिन्दी पत्रकारिता के विकास में आर्य समाज ने ऐतिहासिक भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वाह किया था। महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन-काल के कुछ वर्ष ही ४ अप्रैल १८२३ ई को अंग्रेज सरकार ने समाचार पत्र तथा मुद्रण संबंधी नूतन कानूनों को चरितार्थ किया था। स्वामी जी की शिशु अवस्था के काम में युगल किशोर शुक्ल ने कलकत्ता से हिन्दी का प्रथम पत्र साप्ताहिक उदन्तमार्तण्ड के प्रवेशांक ३० मई, सन् १८२६ को प्रकाशित किया था।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार हेतु पत्रकारिता के महत्व को स्वीकारा, इसीलिए उन्होंने आर्य भाषा में पत्र-पत्रिकाओं के मुद्रण-प्रकाशन व्यवस्था की स्थिति को संम्पुष्ट किया। इस दिशा में ब्राह्म समाज ने भी उनकों प्रभावित किया था। यद्यपि २० अगस्त, सन् १८२८ ब्राह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय सन् १८७२-१८७३ इनके अग्रगामी थे परन्तु दयानन्द सन् १८२४-१८८३ सन् १८७२ में कलकत्ता पहुँचे थे जहां ब्रह्म समाज की गतिविधियों ने उनको सोचने-समझने के उपयुक्त अवसर प्रदान किये थे। नव विधान समाज २४ जनवरी १८६८ ई के प्रवर्तक केशवचन्द्र सेन सन् १८३८-१८८४ तक स्वामी जी के मित्र थे जो कि बंगला में साप्ताहिक सुलभ-समाचार और मासिकी वामा-वोधिनी सन् १८६३ में प्रकाशित करते थे। इसी परिवेश ने स्वामी जी को भी पत्रकारिता की ओर समुचित रूप से उन्मुख किया।

स्वामी जी ने समृसामयिक परिस्थिति के कारण आर्य समाज की स्थापना की, जिसने पत्रकारिता के संबंध में तत्कालिक परिवेश से प्रभावित तथा निर्देशित करने की सार्थ चेष्टा की। उक्त युग में भारतेन्दु युग सन् १८७५-१९०० के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सन् १८५०-१८८५ और स्वामी दयानन्द ने हिन्दी पत्रकारिता के साहित्यिक तथा समाजिक पक्ष को न केवल प्रवर्त ही किया अपितु उसका नेतृत्व भी किया। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाएं स्वामी जी के विज्ञापनों, सूचनाओ पत्रों तथा समाचारों को भ्रामक रूप में प्रकाशित कर दियाकरते थे, अतएव स्वामीजी ने स्वतंत्र तथा पृथक रूप से पत्रकारिता के सम्वर्द्धन का दृढ संकल्प किया था। स्वामी जी आर्य समाज, वैदिक धर्म भाषा और सामाजिक सुधार हेतु पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के परम इच्छुक थे। सनातनी तथा ईसाइयों के आघात, आक्रमण और दुष्प्रचार के निराकरण एवं समाधान हेतु स्वामी जी ने पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आवश्यक समझा। स्वामी जी के प्रेरणा से उनके सामयिक युग में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सुचारू रूप से प्रकाशन हुआ।

महर्षि दयानन्द के जीवन की सांध्य बेला में आर्य दर्पण सन् १८७० में आर्य भूषण सन् १८८६ तथा भारत सुदशा प्रचर्तक सन् १८७९ प्रकाशित हुए थे। शाहजहाँपुर से मुन्शी बख्तावर सिंह के सम्पादन में आर्य दर्पण जो कि सन् १९०६ तक प्रकाशित होता रहा और उसने पश्मित्तोर प्रान्त में आर्य समाज-आन्दोलन की गति में वृद्धि लाने हेतु क्रियात्मक योगदान दिया था। यही सेदूसरा मासिक पत्र आर्य भूषण निकला था।

स्वामी जी ने भारत दुर्दशा समर्थक मासिक का नाम-परिवर्तन कर उसे भारत सुदशा प्रवर्तककर दिया था। यह गणेश प्रसाद शर्मा के सम्पादन में फर्रूखाबाद आर्य समाज प्रकाशित करता था। इस बार इसमें नाटक प्रकाशित हो गया था जिसके कारण दयानन्द जी ने अपने १६ अक्टूबर, १८८२ के पत्र द्वारा सम्पादक को भविष्य में नाटक न प्रकाशित करने का आदेश दिया। यह मासिक लंदन भी जाता था। बाद में यहजुलाई, १९२१ ई में साप्ताहिक होगया। स्वामीजी के स्वर्गवास के पश्चात उन्नसवीं सथाब्दी के, विसेषंश सन् १८८४ में प्रकाश और वेद प्रकाश में आर्य समाचार एवं आर्य विनय, सन् १८८७ में आर्य सिध्दांत और आर्यव्रत सन् १८८८ में भारत-भगिनी, सन् १८८९ में राजस्थान समाचार एवं सत्धर्म प्रचार सन् १८९० में परोपकारी तिमिर नाशक ब्रम्हावर्त और सन् १८९७-९८ आर्य मित्र और पांचाल पंडित प्रकाशित हुए।

दयानन्द सरस्वती की पुनीत प्रेरणा से सन् १८८४ में उनके निधन के एक वर्ष पश्चात तुलजाराम खाण्डवाला के सम्पादकत्व में बम्बई प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक मुख पत्र आर्य प्रचार प्रकाशित हुआ था।

वास्तव में उपरोक्त पत्र पूर्ण रूप में वेद धर्म प्रचारिणी सभा सन् १८८१ का मासिक मुख पत्र था जिसका तीन-चार वर्ष का ही जीवन-काल रहा, यह पत्र उसकी स्मृति में चला और उक्त सभा के सदस्य आर्य समाज में सम्मिलित हो गए थे। मासिक पत्र के सम्पादक मोतीलाल दलाल और ग्राण जीवन दासगुप्त थे। सन् १८९३ में साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन स्थगित हो गया। बीच के तीन-चार वर्षों तक यह बडीदा से भी प्रकाशित हुआ। इसका पुनर्प्रकाशन हुआ और इसके सन् १८१८ तक सम्पादक राघवेन्द्र शास्त्री बने।

आर्य समाचार, मेरठ का मासिक था और आर्य-विनय मुरादाबाद का सम्पादका चार्य रुद्रदत्त शर्मा का व्यक्तित्व आर्य-विनय तथा आर्यवर्त के साथ रहा है। भारत-भगिनी ने नारी-उत्थान और शिक्षा में पूर्ण योगदान दिया था। साप्ताहिक राजस्थान-समाचार को अजमेर से मुन्शी समर्थदान ने

निकाला था। सद्धर्म-प्रचारक के प्रवर्त स्वामी श्रद्धानंद थे। परोपकारी सभा अजमेर से और ब्रम्हावर्त खीरी से संबंधित था। परोपकारी और आर्य मित्र पुराने मासिक है। पांचाल पंडिता जलंधर ने वही कार्य किया जो कि भारत-भगिनी ने।

मध्यप्रदेश तथा विदर्भ आर्य प्रतिनिधि सभा की मासिक मुख पत्रिका आर्य सेवक सन् १९०० से बीसवीं शताब्दी की आर्य समाज पत्रिका का श्रीगणेश होता है। इनके पाक्षिक रूप के सम्पादक नरसिंहपुर के गणेश प्रसाद शर्मा थे और सन् १९७२ विशेष उल्लेखनीय है। आर्य समाज सताब्दी के साथ इसकी हीरक जयंती रायपुर में मनायी जा चुकी है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रथम जन्म शताब्दी सन् १९२५ तक आर्य समाज ने अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया।

सन् १९०९ में मासिक वारतोदय ज्वालापुर और मासिकी उषा लाहौर, सन् १९१० में मासिक नवजीवन तथा साप्ताहिक सत्य सनातन धर्म कलकत्ता सन् १९१४ में मासिक अमर्य लाहौर, सन् १९१८ में साप्ताहिक ब्रह्मा मेरठ और धर्मवीर साप्ताहिक सन् १९१९ में साप्ताहिक तथा मासिक आर्य कुमार और द्विमासिक वैदिक मार्तण्ड कोल्हापुर सन् १९२० में मासिक भारतीय जालंधर और साप्ताहिक ''श्रद्धा'' कांगडी सन् १९२३ में दैनिक अर्जुन, और साप्ताहिक आर्य मार्तण्ड अजमेर, सन् १९२४ में मासिक अलंकार, कांगडी मासिक आर्यजगत् पंजाब-स्थि-बिलोचिस्तान आर्य प्रतिनिधि सभा आर्य गजट लाहौर आर्य जीवन, बंगाल-बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा और मासिक गुरुकुल समाचार, सन् १९२५ में साप्ताहिक सत्यवादी और साप्ताहिक प्रकाशित की गयी थीं।

गांधी युग सन् १९२०-१९४८ में आर्य समाज की अनेक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुई जिन्होंने भारतीय स्वाधीनता संग्राम में अविस्मरणीय योगदान दिया।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का मुख पत्र सार्वदेशिकन सन् १९२७ में प्रकाशित हुआ। इसके विशेषांक ऐतिहासिक महत्व रखते हैं जिनमें स्वामी श्रद्धानंद बलिदान-अंक २४ दिसम्बर, १९६५ और महर्षि दयानन्द जीवन कि शेषांक २० अगस्त १९६७ उल्लेखनीय है। दैनिक हिन्दी मिलाप सन् १९२८ जालंधर मासिक ''वेदोदय'' सन् १९३० प्रयाग साप्ताहिक गुरूकुल सन् १९३६ कांगडी, आर्य सन्देश सन् १९३६-३७, आगरा, दैनिक तथा साप्ताहिक जाग्रति सन् १९३० बंगाल, साप्ताहिक जागृति सेन, बंगाल साप्ताहिक सम्राट सन् १९४७ दिल्ली आदि महत्वपूर्ण रहे हैं।

स्वतंत्र भारत में आर्य समाज ने अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रवर्तन-संचालन किया। जिनमें गुरुकुल कांगडी की मुख पत्रिका सन् १९४८, मासिकी, ''वेदवाणी'' सन् १९४९ वाराणसी मासिक वेदपथ सन् १९४९ सहारनपुर, मानव-पथ सन् १९५२ दिल्ली और मासिकी आर्य शक्ति सम्वत २०१० बम्बई विशेष उल्लेखनीय हैं।

आर्य समाज ने हिन्दी की अनेक श्रेष्ठ पत्रकार-सम्पादक दिये, जिनमें महात्मा मुंशीराम सन् १८५६-१९२६, सम्पादकाचार्य रुद्रदत्त शर्मा, डॉ. हरिशंकर विद्यालंकार कृष्णचन्द्र विद्यालंकार, जयंत वाचस्पति, अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार आदि के नाम महत्वपूर्ण हैं। गणेश सर्णा, गुरुदत्त, महाशय कृष्ण आदि आर्य समाज के तपस्वी पत्रकार थे।

आज कल अनेक आर्य समाज अपने मुख-पत्र प्रकाशित कर रहा है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पत्र-प्रकाशित कर रहा है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मुख्य पत्र साप्ताहिक सार्वदेशिक के सम्पादक ओमप्रकाश त्यागी और सह सम्पादक रघुनाथप्रसाद पाठक हैं। तथा अखिल भारतीय दयानन्द सेवाश्रम संघ के प्रमुख मासिक पत्र का सम्पादन आर्ययुवक नेता एवं प्रसिद्ध पत्रकार श्री अशोक कुमार भारद्वाज व श्री ओमप्रकाश त्यागी संसद सदस्य कर रहे हैं। इसका मौरशिस आर्य सम्मेलनांक सितम्बर अक्टुबर, १९७३ अविस्मणीय है। परोपकारी सभा, अजमेर का मुख पत्र मांसिक परोपकारी है जिसके सम्पादक डॉ. मानकरण शारदा, श्रीकरण शारदा, प्रबंध सम्पादक डॉ. भवानीलाल भारतीय और आदर्श सम्पादक डॉ. विशपूजन सिंह कुशवाह हैं। इसमें महर्षि दयानन्द स्मारक न्यास, टंकारा का मुख पत्र टंकारा-पत्रिका भी सम्मिलित है। परोपकारी के प्रत्येक वर्ष प्रकाशित कृषि मेला विशेषांक द्रष्टव्य हैं। उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा का मुख्य पत्र आर्यमित्र हैं। जिसके सम्पादक उमेशचन्द्र स्नातक और आचार्य रमेशचन्द्र हैं तथा प्रबंध सम्पादक नारायण प्रिय है। दक्षिण आर्य प्रतिनिधि सभा का मुख पत्र आर्य भानु, १९४५ से ५२ तक विनायकराव विद्लंकार, खणेराव कुलकर्णी प. कृष्णदत्त आदि के सम्पादकत्व में प्रकाशित होते रहे। तदन्तर पं. नरेन्द्रजी ने विवृत्ति एवं मासिक आर्य जीवन है जिसके सम्पादक नरेन्द्र हैं स्वाध्याय मण्डल बम्बई की मुख पत्रिका मासिक वैदिक धर्म है जिसके संस्थापक श्रीपाद दामोदर सातवलेकर हैं। इसके सम्पादक नवीनचन्द्र पाल हैं और परामर्शदाताओं में सत्यकाम विद्यालंकार, शंकरदेव विद्यालंकार और महेशचन्द्र शास्त्री है। दिल्ली दीवानहाल आर्य समाज का मुख्य मासिक ''आर्य'' गजट है जिसके आदरणीय संपादक महात्मा आर्य भिक्षु और व्यवस्था-सम्पादक दुर्गादास शर्मा हैं।

आर्य समाज स्थापना शताब्दी अप्रैल, १९७५ के सांस्कृतिक अवसर पर अनेक पत्र पत्रिकाओं के विशेषांक प्रकाशित किये, जिनमें साप्ताहिक सार्वदेशिक दिल्ली आर्य मित्र लखनऊ आर्य गजट दिल्ली वैदिक धर्म बम्बई, परोपकारी, साप्ताहिक मानव प्रहरी उज्जैन के नाम कर्चित हुए। परोपकारी ने मार्च, १९७५ में महर्षि दयानन्द-आत्मकथा विसेषांक निकालकर हिन्दी जगत की अपूर्व सेवा की। आर्य समाज स्थापना-शब्दी के अवसर पर परोपकारी के सचित्र विशेषांक के रूप में परोपकारी सभाका इतिहास एक महत्वपूर्ण देन है।

उत्तम, मध्यम और अधम पाश

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥१५॥

-आचार्य प्रियव्रत

अर्थ- (आदित्य) सूर्य की भाँति प्रकाशमान् और विनाश-रहित (वरुण) है वरणीय प्रभो ! हमारे (उत्तमम्) सबसे ऊँचे, अर्थात् सिर के (पाशम्) बन्धन को (उत्-श्रथाय) ऊपर से उतारकर शिथिलकर दीजिए (अधमम्) सबसे निचले, अर्थात् पैरों के वन्धन को (अव-श्रथाय) शिथिल करके नीचे गिरा दीजिए और (मध्यमम्) मध्यभाग के बनधन को भी (विश्रथाय) वियुक्त करके शिथिल कर दीजिए । (अथ) आपकी कृपा से हमारे पाशों के शिथिल हो जाने के अनन्तर (वयम्) हम लोग (अनागसः) निष्पाप होकर (तव) आपके (व्रते) नियमों में (अदितये) अखण्डितरूप से उनका पालन करने के लिए (स्याम) रहें ।

पिछले मन्त्रों में हम देखते आ रहे हैं कि भगवान् ने विभिन्न क्षेत्रों के लिए जो विइवन्नन नियम बना दिये हैं उनका पालन न करना ही पाप है । इस नियम-भङ्ग से, इस पाप से हम दुःख के वन्धन में फँस जाते हैं । दुःख में फँसानेवाला होने के कारण यह नियम-भङ्गरूप पाप ही पाश बन जाता है । पाप-पाश को काटने के लिए हमें भगवान् की सहायता लेना आवश्यक होता है । भगवान् उसी व्यक्ति के पाशों को काटते हैं, जो उनकी भक्ति-उपासना में भैटकर उनके महनीय गुणोंके चिन्तन द्वारा अपने जीवन को यज्ञमय और हविर्मय बना लेता है । गत मन्त्रके मनन में उपासक ने प्रभु की भक्ति का सहारा लेकर अपने जीवन को यज्ञमय और हविर्मय बनाने का निश्चय कर लिया था । प्रस्तुत मन्त्र में उपासक अपने इसी निश्चय की ओर भगवनान् का ध्यान आकृष्ट करता हुआ उनसे अपने पाप-पाशों को काटने की पुनः प्रार्थना करता है । इस प्रार्थना के प्रसङ्ग में पाप के स्वरूपका भी कुछ विवेचन हो जाता है ।

हमारे पाप-पाश तीन प्रकारके हैं । उत्तम, मध्ययम और अधम । हमारे शरीर में सबसे ऊँचा स्थान सिर का है । त्वचा के अतिरिक्त हमारी सारी ज्ञानेन्द्रियाँ सिर में ही रहती हैं । त्वचा का भी बहुत-सा भाग सिर में रहता है । हमारे सारे सोच-विचार, समग्र ज्ञान-विज्ञान का साधन सिर में ही रहताहै । इस मस्तक में ही हमारा आत्मा निवास करता है । हमारी सारी सारी ज्ञानशक्ति का केन्द्र सिर ही है, इसलिए संस्कृत में सिर को उत्तमाङ्ग-सबसे श्रेष्ठ अङ्ग कहा जाता है । इस उत्तमाङ्ग सिर से सम्बन्ध रखनेवाले पाप-पाशों को मन्त्र में उत्तम पाश कहा है । हमारे मस्तक में जो पाप-संकल्प उठते रहते हैं और इन पाप-संकल्पों के कारण हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ जो पापाचरण करती रहती हैं, वे सब पाप उत्तम कोटि के पाश हैं । इन पापों का सब पापों में प्रधानता है,क्योंकि हमारे मस्तक नामक ज्ञानाङ्ग में उठनेवाले ये पाप-संकल्प ही हमारे सबप्रकार के पापों के मूल कारण होते हैं ।

हमारे शरीर के मध्यभाग में पेट और जननेन्द्रिय हैं । पेट और जननेन्द्रिय से सम्बन्ध रखनेवाले पापों को मन्त्र में मध्यके, बीच के पाप कहा है । पेट लोभ-लालच का प्रतिनिधि है और जननेन्द्रिय विषयासक्ति का प्रतिनिधि है । हम लोभ-लालच में फँसकर अथवा विषयासकि त में फँसकर जो पाप करते हैं वे सब मध्यमकोटि के पाप हैं । मध्यमकोटि का कहने से यह नहीं समझ लेना चाहिए कि इन पापों में पापता कुछ कम है । शरीर के मध्यभाग से सम्बन्ध रखनेवाला होने के कारण इन्हें मध्यमकोटि का कह दिया गया है । ये पाप यद्यपि शरीर की मध्य इन्द्रियों की प्रेरणा से उत्पन्न होते है तथापि इनका भी मूलकारण तो मस्तक के विचार हीहैं इस दृष्टि से सिर से होनेवाले ''उत्तम''-प्रधान-पापों की अपेक्षा से भी इन पापों को ''मध्यम'' पाप कहा जा सकता है

हमारे शरीर का अधम-सबसे निचला भांग पैर हैं । पैर ज्ञानहीन कर्मेन्द्रियों के प्रतिनिधि हैं । पैर सिर से ठीक उलटे हैं । पैरों में सबसे कम ज्ञानशक्ति होती है, इसलिए वेद में ज्ञानहीन शूद्र को समाजशरीर के पैर कहा गया है । हमारे अनेक पाप, अनेक नियम-भङ्ग, हमारी ज्ञानहीनता के कारण होते हैं । हम सोच-विचार कर, जान-बूझकर, उन पापों को नहीं करते । उन पापों को करने की हमारी इच्छा नहीं होती । हम अज्ञान के कारण उन पापों को कर बैठते हैं । हमारे वे पाप-नियमभङ्ग चाहे अज्ञान के कारण हुए हों तो भी वे हमारे दुःख-बन्धन का हेतु होकर हमारे लिए पाश तो बन ही जाते हैं । अज्ञान के कारम हम जो पाप करते हैं वे सब ''पैर'' के पाप हैं, अधम पाप हैं ।

भगवान् की सङ्गति में आकर उनकी भक्ति-उपासना का सहारा लेकर, उनके उदात्त गुणों के चिन्तन द्वारा अपने जीवन को यज्ञमय और हविर्मय बनाकर जब हम उनसे पाप-पाशों को शिथिल-छिन्न-भिन्न कर देने की प्रार्थना करते हैं तब वे करुणानिधि भगवान् हमारे तीनों प्रकारके पापों को काट देते हैं, हमें निष्पाप बना देते हैं ।

भगवान् आदित्य है । वे सूर्य की भाँति प्रकाशमान् हैं । उनकी सङ्गति में आने से उनकी भक्ति-उपासना में बैठने से हमें प्रकाश प्राप्त होता है । यह प्रकाश हमारे अन्दर की आँखें खोल देता है । अन्दरकी आँखें खुल जाने पर हम दुःख-बन्धन के हेतु पाप-पुञ्ज को अनायास छोड़ देते हैं, तब पाप के त्यागने में जो कुछ आयास-श्रम करना भीपड़ता है, उसे करने की शक्ति और उत्साह को प्रभु बढ़ा देते हैं । यह शक्ति-संचार ही प्रभु की कृपा है, यही उनका वरदान है । इस प्रकाश-प्रदान और शक्ति-संचारके द्वारा हीप्रभुहमारे पाप-पाशों का

बच्चों का बलिदान

-डॉ. सूर्यदेव शर्मा

जब सन् १७०४ ई. में औरंगजेबी फ़ौज ने गुरु गोविन्दसिंह को आनन्दपुरके क़िले में घेर लिया तो गुरु ने क़िले में भोजन-सामग्री कम रह जाने पर अपनी माता और दो छोटे पुत्रों-जोरावरसिंह और फतहसिंह को खेड़ी गाँव में अपने रसोइये गंगाराम ब्राह्मण के घर को रखने को दिया । जबदूसरे दिन माताजी ने वह डिब्बा माँगा तो गंगाराम बिगड़ कर बोला-''आपमुझ पर चोरी लगाती हैं, आपका कोई डिब्बा मेरे पास नहीं है'' । माताजी चुप हो गई। वह ब्राह्मण सीधा मुसलमान कोतवाल के पास गया और उसे संग लाकर माताजी और दोनों बच्चों को पकड़वा दिया, जो सरहिन्द के सूबेदार के पास भेज दिये गये । सूबेदार ने माताजी और बच्चों को तो चाण्डाल बुर्ज में क़ैद कर दिया और उस ब्राह्मण गंगाराम को धक्के देकर निकलवा दिया । ऐ दुष्ट ब्राह्मण गंगाराम ! जिन गुरु गोविन्दसिंह सर्वस्व बलिदान कर दिया, उनकी माताजी और सुकुमार बच्चों को जवाहरात के लालच में शत्रु यवनोंके हाथों में सौंपकर तुझे क्या मिला ? तूने अपने नाम और ब्राह्मण जाति पर यह कलंक का टीका क्यों लगाया । क्या तुझे मालूम था कि तेरी कृतघ्नता और शरण में आए हुए बच्चों और माताजी के साथ विश्वासघात करने से हिन्दू जाति का कितना महान् अपकार हुआ ?

सरहिन्द के सूबेदार वाजिदखाँ ने दोनों बच्चों को बुलाकर सुसलमान बन जानेके लिए कहा तब ज़ोरावरसिंह ने जोरके साथ उत्तर दिया-

भूमंडलका राज्य मिले और क़िले मिलें सोने के । तो भी अपना धर्म छोड़कर, नहीं यवन होने के ।।

ज़ोरावरसिंहके इस उत्तर से सूबेदार नाराज होगया और हुक्म दिया कि दोनों बच्चों को दीवार में ज़िन्दा हीचुन दिया गाय ।तुरन्त आज्ञा का पालन किया गया । बुर्ज की एक दीवार तोड़कर दोनों बच्चों को आमने सामने खड़ा करके दीवार में चुन दिया गया । जब दीवार कमर के ऊपर तकचुन गई, तब एक बार फिर सूबेदार ने उन बच्चों को मुसलमान बननेको कहा, लेकिन फिर भी फ़तहसिंह ने कड़क के उत्तर दिया ।

विष्ठा तो कुत्ते खाते हैं, सिंह कभी नहीं खायेंगे । हम हैं बालक सिंह, कभी इस्लाम नहीं अपनायेंगे ।।

इसको सुनकर सूबेदारके क्रोध का पारावार न रहा । उसने तुरन्त हुक्म दिया कि दीवारपूरी चुन दो । इस प्रकार वे दोनों वीर बालक हँसते-हँसते अपने धर्म पर वलिदान हो गये । धन्य है, वीर बालकों, तुमको धन्य है ! जब तक संसार में सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे तब तक तुम्हारी कीर्ति अमर रहेगी । दुनियाँ तुम्हारी अमर कीर्ति को गायेगी और उस हत्यारे विश्वासघाती गंगाराम को धिक्कारेगी, जिसने लालचवश तुमको शत्रु के हाथ में सौंप दिया था ।

गुरु गोविन्दसिंह पर आघात

हमें आशर्च्य होता है कि गुरु गोविन्दसिंह जैसे राजनीति-कुशल महापुरुष भी शत्रुपक्ष के उन लोगों को नहीं पहचान सके और उन्हें अपने पास बनाये रक्खा, जिन्होंने अन्त में उनके साथ विश्वासघात किया, जो उनकी मृत्यु का कारण बना । कैसे ? सुनिये ।

जब गुरु गोविन्दसिंहजी के पुत्र अजीतसिंह और जुझारसिंह युद्ध क्षेत्र में मारे गये और उनके छोटे पुत्र जोरावरसिंह और फ़तहसिंह को सरहिन्दके सूबेदार वाजिदखाँ ने जीवित दीवार में चुनवा दिया तो गुरु गोविन्दसिंहपंजाब छोड़कर दक्षिण की ओर चले गये और गोदावरी के तट पर पञ्चवटी में तप करने लगे । यहाँ उनके साथ अताउल्लाखाँ और गुलखाँ नामक दो पठान रहते थे । वे कई पीढ़ियों से गुरुजी के घराने का नमक खाते आ रहे थे । एक दिन वह दोनों पठान पञ्चवटी के हाकिम फ़िरोजखाँ के घर भोजन करने गए । वहाँ एक मुसलमान ने उनसे कहा कि ''तुम्हें शर्म नहीं आती जो क़ाफिरों की नौकरी करते हो और फिर भी मुसलमानों के खून का बदला उनसे नहीं लते ?'' इस बात को सुनकर अताउल्लाखाँ और गुलखाँ का चित्त पलट गया । उन्होंने गुरु साहब को मारने का पक्का इरादा कर लिया । एक रात सोते समय गुरु साहब के पेट में गुलखां ने कटार भोंक दी । गुरु साहब ने झट से उठकर तलवारका एक हाथ ऐसा मारा कि नमकहराम गुलखाँ का सिर धड़ से अलग हो गया । अता-उल्लाखां भाग निकला, किन्तु सिक्खों ने उसे भी पकड़कर काट डाला । गुरु का धाव अच्छा होने लगा, तब तक बादशाह बहादुरशाह ने दो कमानें जो किसी से नहीं चढ़ती थीं, चिल्ला चढ़ाने को भेजीं । गुरु साहब ने उन्हें खींचकर जो चिल्ला चढ़ाया तो उनके पेट का कच्चा घाव फिर फट गया और उसी से कार्तिक सुदी ४ संवत् १७६५ को गुरु गोविन्दसिंह का स्वर्गवास हो गया । कुछ लोग कहते हैं कि बादशाह बहादुरशाह ने कमाने जानबूझ कर गुरु के पास भेजीथीं, क्योंकि वह जानता था कि गुरु साहब जोश में आकर जरूर उन पर चिल्ला चढ़ायेंगे, जिससे उनका कच्चा घव फट जायेगा । पाठकों, आपनेदेखा कि गुरु गोविन्द सिंह जैसे राजनीति कुशल भी अपने सरल स्वभाव और घावकच्चा होते हुए भी झूठी शान में आकर शत्रुओं के विश्वासघात और कपट के शिकार बन गये । इसलिए शास्त्र कहता है कि शत्रु का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए और उसकी कपट चालों से सदा सावधान रहनाचाहिए ।

वीर बंदा वैरागी

इनका बचपन का नाम लक्ष्मणदेव था । बचपन से ही यह असत्र-शस्त्र चलाने में निपुण हो गये थे । एक दिन शिकार मेंतीर से घायल एक हिरनी और उसके तड़पते हुए बच्चों की करुण दशा देखकर उसने वैराग्य ले लिया और फिर माथोदास नाम रखकर पंजाब से दक्षिण पञ्चवटी में तपकरने चले गये ।

कुछ दिन बाद गुरुगोविन्दसिंह ने पंजाव से वहाँ जाकर मुसलमानोंके अत्याचारों की कथा उसको सुनाई, जिसको सुनकर वह गुरु का बन्दा (शिष्य) वैरागी बन गया और फिर उसने सेना इकट्ठी करके मुसलमानों से बदला लेने की ठानी । पंजाब में पहुँच कर सामरना के नगर पर चढ़ाई कर दी । गुरु तेग़बहादुर का क़ातिल जलालुद्दीन इसी नगर का रहने वाला था । बन्दा ने नगरके खूब लूटा । उसके बाद पंजाब के अनेक मुसलमानी नगरों को लूटकर मुसलमानों द्वारा हिन्दुओंऔर सिक्खों पर किये गये अत्याचारों का खूब बदला लिया । एक ग्राम में मुसलमान गोहत्या किया करते थे, वैरागी ने उस ग्राम को नष्ट कर दिया, उसी को छोड़ा जिसने चोटी और जनेऊ दिखाये । वैरागी की धाक चारों और जम गई । मुसलमान उसके नाम से काँपने लगे । बहुत से मुसलमान उसको धोखा देने के लिए उसके शिष्य बन गए । वे उसके साथ विश्वासघात करना

चाहते थे। उन्होंने सरहिंद के नवाब को गुप्त पत्र लिखा कि "हमने इसको हाथों पर डाल लिया है अब यह कपट से मारा जायेगा"। वैरागी की नीतिकुशलता ने उस पत्र को रास्ते में ही पकड़वा लिया और फिर उन सब कपटियों का क़त्ल करा दिया। उस स्थान का नाम क़त्लगढ़ी रक्खा। इसके बाद उसने मुसलमानों का कभी विश्वास नहीं किया। यह है व्यावहारिक नीतिकुशलता, जिसकी कमी हमारे राजपूत राजाओं में हमें पग-पग पर खटकती है।

एक बार बलौड़ ग्राम के ब्राह्मणों ने आकर वैरागी से कहा, "महाराज ! मुसलमान हमें रहने नहीं देते। हमारी बहु-बेटियाँ ज़बरदस्ती छीन लेते हैं। गौ को मारकर उसका रुधिर हमारे कुँओं में डाल देते हैं।" वैरागी उठा और उसने उस गाँव के सारे मुसलमानों को नरकधाम पहुँचा दिया।

सन् १७०७ में सरहिंद का घोर युद्ध हुआ। सरहिंद का सूबेदार वजरखाँ पकड़ा गया और ज़िन्दा जला दिया गया। दीवान सुच्चानन्द, जो हिन्दू होकर भी गुरुद्रोही और जाति का दुश्मन था और मुसलमानों से मिल गया था, इस युद्ध में पकड़ा गया और मार डाला गया। वैरागी ने नगर की ईंट से ईंट बज़ा दी और क़िले की दीवार में से गुरु गोविन्दसिंह के दोनों बच्चों, ज़ोरावरसिंह और फ़तहसिंह की हड्डियाँ निकलवा कर विधिवत् संस्कार करके उन पर समाधि बनावा दी। इस प्रकार अपने गुरु के बच्चों के ज़िन्दा दीवार में चुने जाने का बदला वैरागी ने सरहिंद नगर से खूब दिल खोल कर लिया। इसके बाद वैरागी ने और अनेक नगरों को जीता। इतिहास लेखक मोहम्मद लतीफ़ अपनी "History of the Punjab" में लिखता है- "वैरागी ने सहस्त्रों मुसलमानों का वध किया, मस्जिदें और खानकाहें मिट्टी में मिला दीं। लुधियाना से लेकर सरहिंद तक सारा देश साफ़ कर दिया। मुर्दों को क़ब्रों से निकाल कर चील कौवों को खिलाया, इसीलिए मुसलमान उसको 'मलकुलमौत' कहने लगे।"

दिल्ली के बादशाह औरंगजेब के मरने पर बहादुरशाह बादशाह हुआ। वह भी वैरागी से डरता था। उसके भी मर जाने पर बादशाह फरूख़सियर ने वैरागी की शक्ति को कम करने के लिए सिक्खों में फूट डालने की चाल चली। उसने हिन्दू मन्त्री रामदयाल को गुरु गोविन्दसिंह की पत्नी (माता सुन्दरी) के पास भेंट देकर कहला भेजा, हम गुरुभक्त हैं। उन्हीं के वरदान से हमें राज्य मिला है। "वैरागी प्रजा को दुःख देता है, हम सिक्खों को जागीरें देंगे।" माताजी इस चाल में आ गई। उन्होंने सिक्खों को कहला भेजा कि वैरागी सिक्ख नहीं है। उसका साथ नहीं दो। सिक्खों पर इसका प्रभाव पड़ा और सबने वैरागी का साथ छोड़ दिया। बादशाह ने खालसा पंथ से अलग संधिकी। फल यह हुआ कि लाहौर के पास शालीमार बाग के युद्ध में ५००० खालसा सिक्ख वैराग़ी के विरुद्ध तलवार लेकर आ गये।वैरागी को यह देखकर बड़ा दुःख हुआ। उसने तलवार म्यान में करली और सोचने लगा कि गुरु के बच्चों का बदला लेने के लिए और जिन सिक्खों के लिए में लड़ रहा हूँ, जब वही मेरे दुश्मन हो गये तो मैं अब किसके लिए लड़ूँ ? वैरागी ने कुछ दिन बाद एक बार फिर तलवार उठाई और स्यालकोट, गुजरात आदि को विजय कर लिया। अन्त में ३०,००० शाही सेना ने उसे गुरुदासपुर में घेर लिया। उसकी सेना की रसद बंद कर दी गई। सिक्ख मुसलमानों से जा मिले। वैरागी ने विवश होकर आत्मसमर्पण कर दिया। वह अकेला क्या करता ? वह दिल्ली ले जाया गया। जहाँ गरम चिमटों से उसका माँस नोचा गया। उसके बेटे का कलेजा निकालकर उसके मुँह में डाला गया। उसकी मृत्यु के बाद सिक्खों की आँखें खुलीं कि मुसलमानों पर विश्वास करके और वैरागी का साथ न देकर उन्होंने कितनी भारी भूल की है। सिक्खों के सिरों पर इनाम लगाये गये अर्थात् जो कोई उनका सिर काट कर लायेगा उसे इनाम मिलेगा। भाई तारूसिंह चरखी पर चढ़ाकर कपास की तरह ओट दिये गये। अनेक अत्याचार हिन्दुओं और सिक्खों पर फिर होने लगे। यह सब किसका फल था ? आपस की फूट और शत्रुओं पर विश्वास करके जाल में फँस जाने का। इस अभागिन फूट ने ही हमारे देशका और जाति का सत्यानाश किया है। धन्य है वीर बन्दा वैरागी को जिसने अपनी जाति औरधर्म की रक्षा के लिए संन्यास छोड़कर तलवार उठाई और क्षात्र धर्म का पालन करते हुए बडी वीरता से हिन्दू जाति की रक्षाके लिए अपना बलिदान किया।

धन्य वीर बन्दा वैरागी, तेरा था अनुपम बलिदान। आर्य जाति की रक्षा के हित, तूने करतब किये महान्॥

...पृ. १४ का शेष

संहार किया करते हैं।

इस प्रकार प्रभु की सहायता से जब हमारे पाप-पाश कट जाएँगे तब हम अनागस् हो जाएँगे-निष्पाप हो जाएँगे। निष्पाप होने का परणिाम यह होगा कि हम सदा भगवान् के व्रतों में रहा करेंगे। भगवान् ने अधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक सृष्टियों के जो अनेक-'व्रत' अनेक नियम-बना रक्खे हैं हम सदा उनमें रहा करेंगे, सदा उनका पालन किया करेंगे और उनका पालन इस भाँति किया करेंगे कि सदा उनकी।अदिति' रहा करेगी। दिति कहते है खण्डन को, तोड़ने को। अदिति हुई खण्डन न करना, न तोड़ना। जब प्रभु की सहायता से हमारे मनों में से पाप की प्रवृत्ति, नियम-भङ्ग करने की भावना सर्वथा निकल जाएगी, तब हमारा भगवान् के निर्धारित नियमों का पालन इतना परिपूर्ण हुआ करेगा कि उसमें कभी दिति न होगी, सदा अदिति रहेगी। हम स्वप्न में भी कभी किसी नियम का खण्डन न करेंगे। स्वप्न में भी कभी किसी नियम को न तोड़ेगें।अदिति के लिए-पूर्णरूप से पालन के लिए हम भगवान् के व्रतों में दत्तचित रहा करेंगे।

भगवान् के निर्धारित व्रतों का अदितिरूप से-अखण्डितरूप से-पालन करनेका परिणाम यह होगा कि हम "अदिति" कि, प्रकृति की सीमा से निकलकर, फिर एक बार आनन्दमय भगवान् के सीधे सक्षात्कारका अद्भुत, असीम और अपरिमेय सुख प्राप्त करने के लिए उनकी गोद में जाने के अधिकारी हो जाएँगे। जिस अवर्णनीय आनन्द का उपभोग हम पहले भी न जाने कितनी बार कर चुके हैं, मोक्ष के उसी अवर्णनीय आनन्द का पान हम फिर करने लगेंगे।

हे मेरे आत्मन् ! उस वरणीय भगवान् की सङ्गति में जाकरतू भी अपने सब प्रकारके पाप-पाशों को कटा ले और इस प्रकार निष्पाप होकर उस व्रतपति के व्रतोंका अखण्डित रूप से पालन करने वाला बन जा। ऐसा करने से तुझे भी मोक्ष का परमानन्द रस पीनेको मिल जाएगा।

మానవ జీవితం అస్థిరం అమూల్యం

-చలవాది సోమయ్య

ప్రపంచంలో అత్యంతాశ్చర్యకరమైన విషయ మేమిటి ?

మన మానవ జీవితం అస్థిరమైంది. అయితే అమూల్యమైంది. అనే విషయాన్ని గురించి యిప్పుడు తెలిసికుందాం. మహాభారతం అరణ్య పర్వంలో ధర్మరాజుకు యక్షుడు కొన్ని ప్రశ్నలు వేసి వాటికి సమాధానం చెప్పమంటాడు. ఆ ప్రశ్నల్లో ఒకటి, ఈ ప్రపంచంలో అత్యంత ఆశ్చర్యకరమైన విషయం ఏమిటి ? అని. అందుకు సమాధానంగా ధర్మరాజు యిలా అంటాడు.

అహన్యహని భూతాని గచ్ఛంతి యమ మందిరం శేషాఃస్థావర మిచ్ఛంతి కిమాశ్చర్యం తతఃపరం॥ -మహాభారతం. అ.ప.

ప్రతి రోజూ అనేక ప్రాణులు, బంధు మిత్రులు చనిపోవడం మనుషులు చూస్తూనే ఉంటారు. కాని తాము మాత్రం స్థిరంగా ఉండాలనే కోరుతూ ఉంటారు. ఇంత కంటె ఆశ్చర్యకరమైన విషయమేముంటుంది ! అంటాడు ధర్మరాజు. అస్థిరమైన ఈ ప్రపంచాన్ని, శరీరాలను పరిశీలించిన మీదట పెద్దలు మనకెన్నో వాస్తవ విషయాలను బోధించారు చూడండి.

శరీరాదులు అస్థిరమైనవి :

అనిత్యాని శరీరాణి విభవో నైవ శాశ్వతః। నిత్యం సన్నిహితో మృత్యుః కర్తవ్యో ధర్మ సంగ్రహః ॥

-మహాభారతం

'శీర్యత ఇతి శరీరం' - రోగాదులచో క్రమంగా శిథిలమవుతుంది గనుక మన ఈ దేహాన్ని శరీరమన్నారు. శరీరాలు అనిత్యమైనవి. సంపదలు శాశ్వతమైనవి కావు. మృత్యువు మనెలనెప్పుడూ వెన్నంటే ఉంటుంది. కనుక **'కర్తవ్యో ధర్మ సంగ్రహః'** -మన కర్తవ్య కర్మలను -మన విధులను (duties) నిర్వర్తిస్తూ ధర్మాన్ని సంగ్రహించమంటుంది అంటే పంచమహా యజ్ఞాది కార్యాలు నిత్యం ఆచరించమంటుంది భారతం

అస్థిరం జీవనం లోకే అస్థిరే ధన యౌవనే ।
అస్థిరాः దారపుత్రాది ధర్మకీర్తి ద్వయం స్థిరం ॥

-నీతి శాస్త్రం.

ఈ లోకంలో మానవ జీవితం, ధనం యౌవనం, భార్య, బిడ్డలు మొదలైనవన్నీ అస్థిర మైనవే. తానాచరించే ధర్మం, తనకు లభించే కీర్తి మాత్రమే స్థిరమైనవి-శాశ్వతమైనవి.

తస్మాత్ జాగ్రత జాగ్రత !

మాతా నాస్తి పితానాస్తి నాస్తి బంధు స్సహోదరాः అర్థం నాస్తి గృహం నాస్తి తస్మాత్ జాగ్రత జాగ్రత ॥

తల్లి, తండ్రి, బంధువులు, సోదరులు, ధనం గృహం, అన్నీ ఒకప్పుడు లేకుండా పోయేవే. కనుక అజ్ఞానమనే నిద్ర నుండి లేచి జీవిత పరమార్థాన్ని సాధించండి అంటారు పెద్దలు.

సంపదः సందేహో యౌవనం కుసుమో త్సలం । విద్యుచ్చంచల మాయుష్యం తస్మాత్ జాగ్రత జాగ్రత ॥

సంపదలు సందేహాస్పదమైనవి. అవి ఎప్పుడు ఉంటాయో ఎప్పుడు పోతాయో తెలియదు. యవ్వనం కలువ పువ్వులాగా వాడి పోయేదే. ఆయుష్షు మేఘాల్లోని మెఱుపు లాంటిది-క్షణ భంగురమైంది. కనుక అజ్ఞాన మనే నిద్ర నుండి మేల్కొని జీవిత పరమార్థాన్ని సాధించండి అంటున్నారు పెద్దలు.

ఆళయా బద్ధతే లోకే కర్మణా బహుచింతయా
ఆయు క్షీణం న జానాతి తస్మాత్ జాగ్రత జాగ్రత ॥

లోకంలోని జనులు అత్యాశ చేత బంధింపబడినారు. వప కర్మలు చేస్తూ అనేక దుఃఖాలను అనుభవిస్తున్నారు. రోజు రోజుకు ఆయువు క్షీణించి పోతున్నదనే సత్యాన్ని వారు గ్రహించడం లేదు. కనుక అజ్ఞానమనే నిద్ర నుండి మేలుకోండి అంటున్నారు పెద్దలు.

జన్మ దుఃఖ్ జరాదుఃఖం జాయా దుఃఖం పునः పునः । సంసార సాగరం దుఃఖం తస్మాత్ జాగ్రత జాగ్రత ॥

ఆలోచించి చూస్తే జన్మ దుఃఖ కారకమైంది, వృద్ధాప్యం దుఃఖాలతో కూడుకున్నది. అనుకూలవతిగాని భార్య దుఃఖాన్ని కలిగిస్తుంది. మళ్ళీ మళ్ళీ ఈ ప్రపంచంలో పుట్టి దుఃఖాలు అనుభవించకుండ అజ్ఞానమనే నిద్ర నుండి లేచి జనన మరణ రహితమైన, శాశ్వతానంద ప్రదమైన మోక్షాన్ని పొందే ప్రయత్నం చెయ్యండి అంటున్నారు పెద్దలు.

కామः క్రోధశ్చ లోభశ్చ దేహ తిష్ఠంతి తస్కరాः జ్ఞానరత్నాపహారాయ తస్మాత్ జాగ్రత జాగ్రత ॥

కామ, క్రోధ, లోభములనే దొంగలు మన లోని జ్ఞాన రత్నాన్ని సహించడానికి శరీరంలో కాచుకొని ఉన్నారు. కనుక అజ్ఞాన మనే నిద్ర నుండి మేలుకోండి అంటున్నారు పెద్దలు.

ఉచిత మిత్రులు సతి, సుతులూరు పేర్లు
ధనము ధాన్యంబు పాడియు ఘనమతములు
నాశమొందును, ధీరుడై నమ్మబోకు
నీవెస్థిరుడవెఱుంగనో నిన్ను వేమ ।

మిత్రులు, భార్య, బిడ్డలు, ఊరు, పేరు, ధనం ధాన్యం, పాడిపంటలు, గొప్ప గొప్ప మతాలు అన్నీ నశించేవే. వివేక వంతుడవై వీటిని స్థిరమని నమ్మక నీవే స్థిరుడవు శాశ్వతుడవని నమ్ము. నీవెవరివో నీవు తెలిసికో అన్నాడు వేమన.

దేహేంద్రియ ప్రాణ మనోఽహ మాదయः
సర్వేవికారా విషయాఃసుఖాదయः
న్యోమాది భూతాస్యఖిలం చ విశ్వ
మవ్యక్త పర్యన్త మిదం హ్యనాత్మా ॥

-వివేక చూడామణి. 124 శ్లో

శరీరం, నేత్రము (కన్ను) శ్రోత్రము (చెవి) త్వక్కు (చర్మము) జిహ్వ (నాలుక) ఘ్రాణము (ముక్కు) అనే పంచ జ్ఞానేంద్రియాలు, వాక్ పాణి (చేయి) పాదము, పాయువు (మల విసర్జకావయవము) ఉపస్థ (యోని లేక పురుషాంగము) లనబడే పంచ కర్మేంద్రి యాలు, ప్రాణ, అపాన, వ్యాన, ఉదాన, సమాన, నాగ, కూర్మ, కృకర, దేవదత్త, ధనుంజ యములనబడే పది ప్రాణాలు, మనస్సు, అహంకారం, శబ్ద స్పర్శ, రూప, రస గంధము లనే విషయాలు సుఖ దుఃఖాలు, ఆకాశము వాయువు అగ్ని జలము భూమి అనబడే పంచభూతాలు, ప్రకృతి పర్యంతంగల ఈ సమస్త విశ్వం వికారం-మార్పులు చెందేదే. ఇవేవీ ఆత్మకావు. ఆత్మ వీటికి భిన్నమైంది అన్నారు శ్రీ శంకరాచార్యులవారు వివేక చూడామణిలో.

అయితే ఈ మానవ శరీరం అస్థిరమైందే అయినా ఎంతో అమూల్యమైంది అని కూడ మనం గుర్తించాలి. దీని ద్వారానే మనం పరమేశ్వర సాక్షాత్కారం పొంది మోక్షానందాన్ని అనుభవించ వలసి ఉంటుంది.

ఈ లోకంలో మూడు దుర్లభమైనవి :-

దుర్లభం త్రయమేవైతద్దైవాను గ్రహహేతుకమ్ ।
మనుష్యత్వం ముముక్షుత్వం మహాపురుష సంశ్రయమ్ ॥ -వివేక చూడామణి. 3 శ్లో

దుర్లభమైనవి, దైవానుగ్రహంచేతగాని లభించనివి ఈ లోకంలో మూడున్నాయి. ఒకటి

మనుష్యుడుగా పుట్టడం, రెండవది మనుష్యుడుగా పుట్టి తనకు మోక్షం కావాలనే కోరిక-తపన కలగడం, మూడవది పరమేశ్వర సాక్షాత్కారం పొంది, ఇతరులకు ఆ మార్గం చూపగలి గిన మహాపురుషుల వద్ద ఆశ్రయం దొరకడం ఈ మూడూ దుర్లభమన్నారు శ్రీ శంకరులు. ఆయన ఇంకాయిలా అన్నారు.

జంతూనాం నరజన్మ దుర్లభ మతః పుంస్త్వం తతోవిప్రతా । తస్మాద్వైదిక ధర్మమార్గ పరతా విద్వత్త్వ మస్మాత్పరం । ఆత్మానాత్మ వివేచనం స్వనుభవో బ్రహ్మాత్మనాసంస్థితి । ర్ముక్తిర్నో శతకోటి జన్మ సుకృతైః పుణ్యైర్వినాలభ్యతే ॥ వివేక చూడామణి. 2 శ్లో

'జంతూనాం నరజన్మ దుర్లభం' ప్రాణులన్నింటిలో మానవ జన్మ లభించడం దుర్లభం (కష్ట సాధ్యమైంది). అతః పుంస్త్వం-అందులోనూ పురుషుడుగా పుట్టడం యింకా అదృష్టం. ఏం స్త్రీలుగా పుట్టడం అదృష్టం కాదా ? అని మారవచ్చు. పురుషుల కున్నంత స్వేచ్ఛ భగవ శ్చింతనలో కాలం గడవడానికి వారికున్నంత సమయం స్త్రీల కెక్కడుంటుంది చెప్పండి ? వారు బిడ్డల్ని కనాలి, పిల్లల్ని పెద్దల్ని సంబా ళించుకోవాలి, వంట వార్పులు చూచుకోవాలి, అంట్లు తోవాలి, బట్టలుతకాలి, ఇంటిని శుభ్రంగా ఉంచుకోవాలి, బంధువులో మిత్రులో ఇంటికి వస్తే వారికి టిఫిన్, కాఫీయో యిచ్చి మర్యాదలు చెయ్యాలి ఇలా ఇంటి డ్యూటీ కాక యివ్వాళ స్త్రీలు ఉద్యోగాలకు వెళ్ళుతున్నారు గనుక ఆఫీసు డ్యూటీ చెయ్యాలి అంటే డబల్ డ్యూటీ చేయాలి. మగవాడికి ఉద్యోగమో, వ్యాపారమో, వ్యవసాయమో ఏదో ఒక డ్యూటీ యేకదా ఉండేది ? కనుక స్త్రీల కంటే మగవారికి ఎక్కువ సమయం ఉంటుంది భగవధ్యానాదులు చేయడానికి. అందుకనే స్త్రీగా పుట్టడం కంటే పురుషుడుగా పుట్టడం అదృష్టమనేది. **'తతోవిప్రతా'** పురుషుడుగా పుట్టడంతో పాటు విప్రుడు-శాస్త్రాలు చదువుకునే వారింట్లో పుట్టడం యింకా అదృష్టమన్నారు. **'తస్మాత్ వైదిక ధర్మమార్గ పరతా-**అంతకంటే వేదాధ్యయనం చేస్తూ వైదిక ధర్మాన్ని ఆచరించే వారింట్లో పుట్టడం యింకా గొప్ప విషయం అన్నారు. **'విద్వత్త్వం అస్మాత్ పరం'**-ఇంత కంటె వేదాలు, శాస్త్రాలు బాగా చదువుకొని విద్వాంసుడు-పండితుడు కావడం యింకా శ్రేష్ఠమైందన్నారు. **'ఆత్మానాత్మా వివేచనం'** -దానికంటె ఆత్మ అంటే ఏమిటి ? అనాత్మ-అనాత్మ-ఆత్మకానిదేమిటి అనే వివేచన-విడివిడిగా తెలిసికునే జ్ఞానం కలగడం యింకా గొప్ప సంగతి అన్నారు. **'స్వనుభవో బ్రహ్మాత్మ నాసం స్థితిః'** -దాని కంటె స్వానుభవంతో పరమేశ్వర సాక్షాత్కారం పొందడం యింకా దుర్లభమైంది. **'ముక్తిర్నో శతకోటి జన్మ సుకృతైః పుణ్యైః వినాలభ్యతే'** -ఆ తరువాత మోక్షం పొందడమనేది వందకోట్ల జన్మల్లో చేసిన సత్కార్యాలు-పుణ్యకార్యాల ఫలం వల్ల కలిగేదే సుమా ? అన్నారు శ్రీ శంకరులు. అంటే మానవ జన్మ ద్వారానే మనం ముక్తిని సాధించగలం గాని పశుపక్ష్యాది జన్మల్లో అలా సాధించడానికి వీల్లేదన్నమాట. అందుకు కారణమేమిటంటే,

అన్యప్రాణుల నుండి మనిషిని వేరు చేసేది జ్ఞానమే :-

ఆహా నిద్రా భయమైథు నాని । సామాన్య మేతత్పశుభిర్నరాణాం । జ్ఞానం హి తేషామధికో విశేషో । జ్ఞానేన హీనాః పశుభిః స్సమానాః ॥ -ఉత్తర గీత.2-44.

ఆహారం తీసికోవడం, నిద్రపోవడం, ఏదైనా ఆపది-ప్రాణాపాయ స్థితి సంభవించినపుడు భయపడడం, మైధునం-స్త్రీ పురుష సంబంధంతో సంతానం కనడం ఇవన్నీ పశుపక్ష్యాది ప్రాణులకు మానవులకు సమానమే. కాని మనిషిలో జంతువులకంటె యుక్తా యుక్త విచక్షణ జ్ఞానం అధికంగా ఉంటుంది. అలాంటి విచక్షణ జ్ఞానం లేని మానవుడు పశువుతో సమానం అన్నారు పెద్దలు.

చూడండి ఈ ప్రపంచం పుట్టి కోట్లాది సంవత్సరాలు గడిచాయి. ఏజంతువూ స్వయంగా చంద్రమండలానికి వెళ్ళలేదు. కాని మనిషి తన జ్ఞానాన్ని పెంచుకొని యివ్వాళ చంద్ర మండలానికి వెళ్ళి వస్తున్నాడు. ఇతర గ్రహాలకు కూడ వెళ్ళే ప్రయత్నం చేస్తున్నాడు. అంతే కాక మనిషిలో యుక్తాయుక్త విచక్షణ జ్ఞానం-ఇది చేయదగిన పని, ఇది చెయ్యకూడని పని అనే జ్ఞానం ఉంది. జంతువుల్లో అది లేదు. జంతువులు మాతృ గమనం చేస్తాయి. అది వాటికి తప్పుకాదు. కాని మనిషికి అది తప్పని తెలుసు. మనిషి తన భార్యతో శరీర సంబంధం పెట్టుకుంటాడు గాని తల్లితో పెట్టుకోడు గదా ? ఏ జంతువూ పుస్తకాలు వ్రాయదు, చదవదు. జ్ఞానం పెంచుకోదు. భగవంతుణ్ణి పొందాలనే ప్రయత్నం చెయ్యదు. కాని మనిషి ప్రపంచాన్ని పరిశీలిస్తాడు. తన జ్ఞానాన్ని పెంచుకుంటాడు. గ్రంథరచన చేస్తాడు. భగవంతుణ్ణి పొందాలనే ప్రయత్నం చేస్తాడు. ఇలా అనేక విషయాల్లో పశుపక్ష్యాది జన్మల కంటె మానవజన్మ ఉత్తమమైందనే విషయం మనకు తెలుస్తుంది. మరి ఇలాంటి ఉత్తమమైన మానవ జన్మను పొంది ఈ శరీరం ద్వారా ముక్తిని సాధించే ప్రయత్నం చేయక పోవడం ఎంతటి హాస్యాస్పదమో, మానవ జన్మను ఎంతగా వృథా చేసుకుంటున్నామో ఒక కవి చమత్కారంగా వర్ణించాడు చూడండి.

ఈ మానవ శరీరం ద్వారా ముక్తిని సాధించకపోతే అది వృథా అవుతుంది :

న కమలేన ఆతపత్రం కరోతి, చందనేన లాంగలం కరోతి, సువర్ణేన కుశం కరోతి, రత్నేన కాకోద్యయనం కరోతి, అమృతేన పాద శౌచం కరోతి, గజేన ఇంధనాహరణం కరోతి, పట్టదుకూలేన గడుబంధనం కరోతి, యః శరీరేణ ముక్తిం న సాదయతి ॥

-కర్ణకసముచ్చయము

'యః శరీరేణ ముక్తిం నసాధయతి'-ఎవడు ఈ శరీరం ద్వారా మోక్షాన్ని సాధించే యత్నం చేయడో అతడెలాంటివాడంటే, 'నకమలేన **ఆతపత్రం కరోతి'** -అతడు తామరపూలతో ఆతపత్రం-గొడుగును తయారు చేసికునేటటువంటివాడట. తామర పువ్వులు కొలనులో ఉంటే బాటన వచ్చే వాళ్ళకు పొయ్యే వాళ్ళకు చూడడానికి చాలా అందంగా కనబడతాయి. అలా కాకుండా ఆ తామర పూలను కోసి గొడుగు చేసికుటే ఏమౌతుంది ? తామరపూలు ఎండకు వాడిపోతాయి. ఆగొడుగు వల్ల ప్రయోజనం ఉండదు. ఇంకా అతడెలాంటి వాడంటే **'చందనేన లాంగలం కరోతి'** -చందన వృక్షంతో లాంగలం-నాగలి తయారు చేసికొని భూమిని దున్నుతాను అనేటువంటి వాడట ! చందనం కఱ్ఱ చాలా విలువైంది. కిలో నాలుగైదు వందల రూపాయల ఖరీదు చేస్తుంది. దాన్ని సుగంధ ద్రవ్యాల్లో, సబ్బులు తయారు చేయడంలో వాడుతారు. అలాంటి ఉత్తమ కార్యాలకు ఉపయోగించే చందనం కఱ్ఱను నాగలి చేసికుని భూమిని దున్నుతానంటె ఎంతటి హాస్యాస్పదంగా ఉంటుంది ! భూమిని దున్నడానికి తుమ్మ మొద్దునో, దేన్నో నాగలి చేసికొని దున్నాలి గాని చందనం కఱ్ఱతో నాగలి చేసికొని దున్నుతానంటే ఎంత తెలివి తక్కువతనం ! ఇంకా చెబుతున్నాడు ! **'సువర్ణేన కుశం కరోతి'** -అతడెలాంటి వాడంటే బంగారంతో కుశం-పశువుల్ని కట్టి వేస్తారు గాని అటువంటి

విలువైన బంగారంతో పలుపులు తయారు చేసి గేదెలను కట్టి వేస్తాననడం ఎంత తెలివితక్కువ పని ! **'రత్నేన కాకోడ్యయనం కరోతి'** -అళ్ళనో అప్పల్నో (చిన్నఅళ్ళు) విసిరి కాకుల్ని అందిం చాలి గాని, రత్నాలను విసిరి కాకుల్ని పారద్రో లతానంటే ఎంతటి మతిలేనిపని ! **'అమృతేన పాదశౌచం కరోతి'** -అమృతం అంటే మనిషి దీర్ఘకాలం జీవించడానికి వినియోగించే ఒక రసాయనం. నీళ్లతో కాళ్ళు కడుక్కోవాలి గాని అలాంటి అమృతంతో కాళ్ళుకడుగుకుంటానంటే ఎంత తెలివి మాలిన పని ! **'గజేన ఇందనా హరణం కరోతి'** -గజము-ఏనుగును యుద్ధా ల్లోనూ, రాజును లేదా గొప్ప వారిని ఊరే గించడానికి వినియోగిస్తారుగాని ఇంధనం- వంట చెఱకు'-(పొయ్యిలోనికి కట్టెలు) తేవడా నికి వాడతాననడం ఏమి నబబు చెప్పండి ! **'కస్తూరికయా మసిం కరోతి'** -కస్తూరి ఒక సుగంధ ద్రవ్యం. అది కస్తూరి మృగం నుండి తీస్తారు. అది ఎంతో విలువైంది. దాంతో మసిం -సిరా చేసికొని వ్రాస్తానంటే ఎంత వివేక హీనమైన పని చెప్పండి ! **'గవా కర్షణం కరోతి'** -భూమిని దున్నడానికి ఎద్దులనో, దున్నలనో వినియోగిస్తారుగాని అవి-మధురమైన పాలిచ్చే గోవుల్ని కర్షణం-వ్యవసాయానికి వినియోగిస్తా ననడం ఎంత హాస్యాస్పదంగా ఉంటుంది ? **'పట్టదు కూలేన గదు బంధనం కరోతి'**-పట్టదు కూలం-సన్నని విలువైన పట్టు వస్త్రాన్ని చించి గదుబంధనం-గాయానికి కట్టుకడతాననడం ఎంత తెలివితక్కువ పని చెప్పండి ! పైన వర్ణించి నట్లుగా ఉత్తమమైన వాటిని అల్పమైన వాటికి వినియోగించడం ఎంత హాస్యాస్పదమో ఉత్తమ మైన మానవ శరీరాన్ని పొంది అత్యంత ఆనంద ప్రదమైన మోక్షాన్ని సాధించే ప్రయత్నం చేయ కుండ అల్పమైన విషయాల్లో మానవ జీవితాన్ని వ్యర్థం చేసికోడం ఎంత తెలివిమాలిన పని అవుతుందో చెప్పండి ! అందుకనే ఉపనిషత్ కారుడు కూడ ఈ క్రింది శ్లోకంలో మనల్ని హెచ్చరిస్తున్నాడు.

ఇహచేదవేదీ దథ సత్యమస్తి న చేదవేదీ న్మహతీ వినష్టిః । భూతేషు భూతేషు విచింత్య ధీరాః ప్రేత్యాస్మాల్లో కాదమృతా భవంతి ॥

-కేన ఉపనిషత్. 2-5

'ఇహ అవేదీత్ చేత్ అథసత్యం అస్తి'-ఈ జన్మలో పరమేశ్వర సాక్షాత్కారం పొందితేనే మానవ జన్మ సఫలమైనట్లుగా ఎంచాలి. **'న అవేదీత్ చేత్ మహతీ వినష్టిః**-అలా పరమేశ్వ రుని పొందకపోయినట్లయితే గొప్ప నష్టం కలు గుతుంది. **'ధీరాః'**-ధ్యాన శీలురైన విద్వాంసులు **'భూతేషు భూతేషు'**-చరా చరాత్మకమైన సర్వ పదార్థాల్లో **'విచింత్య'**-పరమేశ్వరుడున్నాడని విచారించి తెలిసికొని వారు, **'అస్మాత్ లో కాత్ ప్రేత్య'**-ఈ సంసారం (ప్రపంచం నుండి) శరీరా దుల్ని విడిచి, **'అమృతాః భవంథి'** -మోక్షం పొందుతారు. అంటే తప్పనిసరిగా ఈ మానవ జన్మలోనే మక్షం పొందే ప్రయత్నం చెయ్యాలి. లేకపోతే గొప్ప నష్టం కలుగుతుంది అన్నాడు ఉపనిషత్కారుడు వేదం ఏమి చెప్పిందో చూడండి.

వేదాహమేతం పురుషం మహాంతం ఆదిత్య వర్ణం తమసః పరస్తాత్ । తమేవ విదిత్వాఽతిమృత్యుమేతి నాన్యః పంథా విద్యతేఽయనాయ ॥ -యజు. 31-18

అజ్ఞాన ఆవరణానికి ఆవల ఉన్నవిజ్ఞానమ యుని మహా పురుషుని నేను తెలిసికున్నాను. అతని తెలిసికుంటేనే మృత్యుముఖము నుండి -జనన మరణ చక్రం నుండి విడివడి అమృత త్వం-మోక్షం పొందగలుగుతాము తరించ డానికి మరొక మార్గమే లేదు అన్నది వేదం.

చార్వాకుల జీవిత లక్ష్యం :-

అయితే కొందరు-చార్వాకులు, భౌతిక వాదులు, నాస్తికులు యిలా అంటారు.

యావజ్జీవేత్ సుఖం జీవేత్ ఋణం కృత్వా ఘృతం పిబేత్ । భస్మీభూతస్య దేహస్య పునరాగమనం కుతః ॥ -చార్వాకదర్శనము

జీవించినంత కాలం సుఖంగా జీవించు. అప్పు చేసైనా నెయ్యి త్రాగు-పప్పుకూడు తిను. చనిపోయిన తరువాత భస్మం చేయబడే ఈ శరీరం మళ్ళీ ఎలాగూ తిరిగిరాదు. అప్పు తీర్చే ప్రశ్నలేదు. **'అంగనాలింగనాజన్య సుఖమేవ పుమర్థ'** -స్త్రీని కౌగిలించుకొని పొందే సుఖం కంటె మించిన పురుషార్థం-పురుషుడు కోరద గిందేముంది ? శారీరిక సుఖాలు, విషయ సుఖాలు అనుభవించడమే జీవిత లక్ష్యంగా ఉండాలి గాని భగవంతుణ్ణి మోక్షాన్ని పొందాల నుకోడం వృధా ప్రయాసే అవుతుంది అంటారు చార్వాకులు, భౌతికవాదులు, నాస్తికులు.

అయితే సమస్త భోగాలూ అనుభవించిన రాజాధిరాజులు (గౌతమ బుద్ధుడు మొదలైన వారు) కూడ ఎందులకని రాజ్యాన్ని భార్యాబిడ్డ లను విడిచి అరణ్యాలకు వెళ్ళి తపస్సుచేసి మోక్షాన్ని పొందే ప్రయత్నం చేశారు ? సమస్త భోగాలను, రాజ్య సుఖాలను అనుభవించిన భర్తృహరి మహారాజు ఏమంటున్నాడో చూడండి.

భోగే రోగ భయం, కులే చ్యుతి భయం, విత్తే నృపాలాద్భయం, । మానే దైన్యభయం, బలే రిపుభయం, రూపే జరాయాభయం । శాస్త్రే వాదభయం, గుణే ఖలభయం, కాయే కృతాన్తా ద్భయం । సర్వం వస్తు భయాన్వితం భువి నృణాం వైరాగ్యమేవాభయం ॥

-భర్తృహరి. వై.శ.49

అష్టవిధభోగాలు :-

భాగాలు 8 రకాలు (అష్టవిధభోగాలు) ఉన్నాయంటారు పెద్దలు. 1) **గృహం**-అన్ని వసతులతో కూడిన సుందరమైన గృహం కలిగి ఉండడం ఒక భోగం. 2) **శయ్య**-మాంసతూలి కాతల్పం. పడుకుంటే అలా గాలిలో తేలిపోతు న్నామా అని అనిపించే మృదువైన-మెత్తని పరుపులు, దిండ్లతో కూడిన (డబల్‌కాట్) పట్టె మంచాలు. 3) **వస్త్రము**-చూడగానే మనిషిని ఆకర్షించే విలువైన, సుందరమైన పట్టు వస్త్రాలు మొదలైనవి ధరించడం. 4) **ఆభర ణము**-విలువైన బంగారము, పలురకాల ఖరీ దైన రాళ్ళతో తయారు చేయబడే కంఠహారాలు -చంద్రహారాలు మొదలైనవి ఉంగరాలు, చెవి పోగులు, దిద్దులు, గాజులు మొదలైనవి ధరించడం. 5) **స్త్రీ పురుష సంబంధం**-ఇది కామశాస్త్ర విషయం. స్త్రీ పురుష సంబంధం అనేక విధాలుగా కామ శాస్త్రాల్లో వర్ణింప బడింది. సంక్షిప్తంగా చెబుతాను. **సుఖక్షతం**-ఆయా శరీరాంగాలను స్త్రీ పురుషులు పరస్పరం గోళ్ళతో నెమ్మదిగా గిచ్చుకోవడం, **దంతక్షతం**-పండ్లతో మృదువుగా స్త్రీ పురుషలు పరస్పరం మెడ, చెవులు, బుగ్గలు స్తనాలు మొదలైన కామకేంద్రాలను నొక్కడం, **తాడనం**-ప్రేమతో పరస్పరం అప్పుడప్పుడు చిన్న చిన్న దెబ్బలు వేసికోవడం, **ఆలింగనం**-స్త్రీ పురుషులు ప్రేమతో పరస్పరం కౌగిలించుకోవడం, **చుంబనం**-వస్త్ర విహీనులై (బట్టలు లేకుండ) పరస్పరం ఆపాదమస్తకం శరీరాంగాలను ముద్దులతో ముంచెత్తడం, **మర్దనం**-కుచ ములు, తొడలు, యోని మొదలైన ప్రాంతాలను పురుషుడు మృదువుగా చేతులతో మర్దించుతూ (పిసుకుతూ) ఆమెలో కామోద్దీపన కలిగించడం, **జిహ్వాయుద్ధం**-స్త్రీ పురుషులు ఒకరినోట్లో ఒకరి నోరును ఉంచి పరస్పరం నాలుకలతో కలబడ డం, **చూషణం అధర చూషణం**-అధరాలను (పెదాలను) ఒకరివి మరొకరు చప్పరించడం, **యోని చూషణం**-పురుషుడు స్త్రీ యోని భాగాలను

చప్పరించడం, **లింగచూషణం**-స్త్రీ, పురుషాంగాన్ని చేత బట్టుకొని ప్రేమతో కుదుపుట. ఇవన్నీ బాహ్యరతులు అనబడతాయి ఇక్కడఇక విషయం చెప్పవలసి ఉంది. పురుష ప్రకృతికి (స్వభావానికి) స్త్రీ ప్రకృతికి చాల తేడా ఉంది. పురుషుడు త్వరగా ఉద్రిక్తుడై రతిక్రియ జరపాలని చూస్తాడు. ఆవేశ పడతాడు. కాని స్త్రీలో రతివాంఛ క్రమంగా గాని కలుగదు. ఇది గ్రహించి పురుషుడు స్త్రీని బాహ్యరతులతో ఉద్రేక పరచి ఆమెను రతిక్రియకు సిద్ధపరచాలి గాని తాను ముందుగా ఉద్రేకపడి రతిక్రియకు పూనుకుంటే అతనికి వీర్యపతనం త్వరగా జరుగుతుంది. పురుషాంగం మెత్తబడి పోతుంది. ఆ తరువాత స్త్రీ ఉద్రిక్తురాలైనపుడు పురుషుడు రతిక్రియ జరపడానికి ఆశక్తు డౌతాడు. అపుడు స్త్రీ తన కోరిక ఫలించ నందుకు చాల బాధపడుతుంది. కనుక పురుషుడు తన్ను తాను నిగ్రహించుకుంటూ మొదట స్త్రీతో బాహ్యరతులు జరపాలి. ఇలా చేయడం వల్ల స్త్రీ క్రమంగా ఉద్రిక్తురాలవు తుంది. ఒక విధమైన సుఖం పొందుతుంది. యోని భాగంలోని గ్రందులు ద్రవించి యోని ద్వారం యోని మార్గం తడి తడిగా ఉంటుంది. అపుడు పురుషాంగం యోనిలోనికి సులభంగా ప్రవేశించగలుగుతుంది. స్త్రీకి కూడ నంతోషంగా బాధలేకుండా హాయిగా ఉంటుంది. ఈ కామ కళను పురుషుడు గుర్తించాలి. ఇలా బాహ్యరతు లతో స్త్రీ ఉద్రిక్తు రాలైన తరువాత పురుషుడు గట్టిపడిన తన పురుషాంగాన్ని యోనిలోనికి మెల్లమెల్లగా ప్రవేశింపజేసి అంతర రతికి పూనుకోవాలి. అంతర రతులు వివిధ శరీర భంగిమలలో ఉంటాయి. ఎదురెదురుగా కూర్చుండి. నిలువబడి స్త్రీ పురుషులు రతి సల్పవచ్చు. పురుషుడు స్త్రీ వెనుక భాగం నుండి ఆమె పడుకున్నపుడు, వంగి నిలువ బడినపుడు కూడ రతి సల్పవచ్చును. పురుషాయితము-పురుషుడు వెల్లికిలా పడుకున్నపుడు, స్త్రీ అతని పైకి వచ్చి పురుషాంగాన్ని తన యోనిలోనికి తీసుకొని స్వయంగా ఆమే రతి సల్పడం పురుషాయితం అనబడుతుంది. ఇలా అనేక భంగిమలతో భార్యాభర్తలు కామసుఖాలను అనుభవించే విధానాలు వాత్స్యాయన మహర్షి వ్రాసిన వాత్స్యాన కామసూత్ర గ్రంథంలోను తదితర కామ శాస్త్ర గ్రంథాల్లోనూ వర్ణించ బడినాయి. ఇలా స్త్రీ పురుషులు కామసుఖాలను తృప్తిగా అనుభవించడం అష్టవిదభోగాల్లో ఒకటిగా లెక్క వేశారు. అష్టవిధభోగాల్లో స్త్రీ, పురుష సంబంధం ముఖ్యమైంది గనుక నూతన వధూవరులను దృష్టిలో ఉంచుకొని కామకళను కొంచెం వివరించడం జరిగింది. అయితే పురుషుడు తన్నుతాను నిగ్రహించుకుంటూ అంతర రతిలో ఎక్కువ సమయం-కనీసం 15 లేక 20 నిమిషాలు గడపాలి. అపుడు స్త్రీకి భావప్రాప్తి కలిగి పరమానంద భరితురాలవు తుంది. భావప్రాప్తి అంటే రతి అంతంలో వీర్యస్థలనం జరిగినపుడు పురుషుడు పొందే ఆనందానుభూతి. ఈ అనుభూతి రత్యంతంలో స్త్రీకి కూడ కలుగుతుంది. పురుషుడు తనను తాను నిగ్రహించుకుంటూ ఎక్కువ సమయం రతిలో పాల్గొంటూ స్త్రీకి భావప్రాప్తి కలిగించే ఉపాయాలు తెలిసికోడానికి ఆయా కామ శాస్త్రగ్రంథాలను చదువగోరతాను. ముఖ్యంగా స్వ. శ్రీరాంషా రచించిన ప్రణయకళ కామ శిల్పం మొదలైన అభిసారిక ప్రచురణలను చదువగోరతాను. నేను వ్రాసిన వైదిక దర్మోపదేశములు ద్వితీయ భాగంలోని పే. 117 నుండి 130 వరకు పేజీలు 179 నుండి 184 లలో కూడ స్త్రీ, పురుష జననాంగాలు, వాటికార్యాలు, వాటి నిర్మాణం, కామకళ, రతి విషయాలు, బ్రహ్మచర్యం మొదలైనవి వివరించ బడినాయి చూడగలరు.

అష్టవిధభోగాల్లో **ఆరవది పుష్పం**-మల్లె, గులాబి మొదలైన సువాసనను వెదజల్లే పూలను స్త్రీలను కురులలో ధరించడం లేదా వాటిని పడకటింటిలో పడకపైచల్లుకొని సువాసనలను ఆఘ్రాణిస్తూ బార్యాభర్తలు కామసుఖాలననుభ వించడం. 7) **గంధము**-చందనం, అత్తరు, పన్నీరు మొదలైన సుగంధ ద్రవ్యాలను శరీరా నికి, వస్త్రాలకు రానికొని సువాసనలను ఆఘ్రాణించడం. 8) **తాంబూలం**-వక్కపొడి, యాలుకలు, లవంగం, జాజికాయ, జాపత్రి, సోంపు, తీపి, పిప్రమెంటు మొదలైన సుగంధ ద్రవ్యాలను కొంచె సున్నం రాసిన తమలపాకు లలో ఉంచి కిళ్ళీకట్టుకొని నములుతూ రసాస్వాదన చేస్తూ సుఖించడం. వీటిని అష్టవిధ భోగాలని పెద్దలు చెబుతారు.

వైరాగ్యమొక్కటే భయంలేనిది :-

అయితే ఈ భోగాలను తగు మాత్రంగా-శరీర ఆరోగ్యం చెడని విధంగా అనుభవించాలి గాని అతిగా సెవించకూడదు. వీటిని అతిగా అనుభవిస్తే శరీరం రోగ గ్రస్తమవుతుంది. అందుకనే పై శ్లోకంలో **'భోగేరోగభయం'** అన్నాడు. **'కులేచ్యుతి భయం'** -నేను అగ్ర కులంలో పుట్టాను గదా అని అనుకుంటే, తన కుటుంబంలోని అమ్మాయో, అబ్బాయో వేరే కులం వాళ్ళతో సంబంధం పెట్టుకొని తప్పు చేస్తే కులస్తులు తమ కుటుంబాన్ని ఎక్కడ వెలివేస్తారో అనే భయం ఉందన్నాడు. **'విత్తేనృపా లాద్భయం'** -విత్తం-ధనం బాగా సంపా దించితే నపాలురు-రాజులు లేక ప్రభుత్వం వారు పన్నుల రూపంలో ఎప్పుడు దనాన్ని హరిస్తారో అనే భయం ఉంది. **'మానేదాన్య భయం'** -మానము-ఆత్మాభిమానం గలవానికి ఎవరెప్పుడు తనను తూలనాడి దైన్యం-దుఃఖం కలిగిస్తారోననే భయం ఉందన్నాడు. **'బలేరిపు భయం'**-నేను చాలా బలవంతుణ్ణి నాకేం ఫరవాలేదనుకుంటే రిపు-శత్రువులు తనకేమి కీడు తలపెడతారోననే భయం ఉందన్నాడు. **'రూపేజరాయాభయం'**-రూపం-నేను చాలా అందంగా ఉన్నాను అనుకుంటే, జరా-ముసలి తనం వచ్చి ముఖము, శరీరం ఎప్పుడు ముడుతలుబడి తన అందం తగ్గిపోతుందోననే భయం ఉంటుంది. **'శాస్త్రేవాదభయం'**-వచ్చి ఎప్పుడు తనను వాదం-శాస్త్రార్థంలో జయిస్తాడో ననే భయం ఉంది అన్నాడు. **'గుణేఖల భయం'**-నేను మంచి గుణవంతుణ్ణి అను కుంటే, ఖలులు-నీచులు, దుష్టులు, తనకేమి బాధలుకలిగిస్తారోననే భయం ఉంటుంది అన్నాడు. **'కాయే కృతాన్తాద్భయం'**-కాయం- తనకు మంచి పుష్టివంతమైన శరీరం లభించింది అని అనుకుంటే, కృతాంతుడు-మృత్యువు తనను ఎప్పుడు తీసికొని వెళతాడో అనే భయం ఉందన్నాడు. **'భువినృణాం సర్వం వస్తు భయాన్వితం'**-ఇలా లోకంలో మానవు లకు అన్నీ భయం కలిగించేవే. ఇక భయం లేనిదేమిటయ్యా అంటే **'వైరాగ్యమే వాభ యమ్'**-వైరాగ్యమొక్కటే భయం లేనిది అన్నాడు భర్తృహరి.

వైరాగ్యమంటే

వైరాగ్యమంటే ఏమిటో పతంజలి మహర్షి చెప్పాడు యోగ దర్శనంలో

'దృష్ట అనుశ్రవిక విషయ వితృష్ణస్య వశీకార సంజ్ఞా వైరాగ్యం -యో.సూ. 1-15

దృష్ట విషయాలు అంటే ఈ లోకంలో మనం చూచే శబ్ద, స్పర్శ, రూప, రస గంధాలకు సంబంధించిన విషయ సుఖాలు. స్త్రీ సేవనం, మృష్టాన్నం-మంచి భోజనం-షడ్రసోపేతంగా భోజనం చేయడం, రాగ, తాళ, నృత్య గీతాదులు వినడం చూడం స్రక్ (పూలు), చందనాది సుగంధ పదార్థాల

నాఘ్రాణించడం (వాసన చూడడం), ఐశ్వర్యం, కీర్తి ప్రతిష్ఠలు సంపాదిం చాలను కోవడం ఇవన్నీ శబ్ద స్పర్శాదులకు సంబంధించిన విషయ సుఖాలు. ఆనుశ్రవిక విషయాలు-వేద బోధిత పారలౌకిక విషయాలు అంటే జన్మాంత రాల్లో పొందాలను కునే విషయ సుఖాల యందు కూడ ఆశలుడిగి-భోగాసక్తి లేనివాడై ఉండడం వైరాగ్యమన బడుతుంది అన్నాడు పతంజలి.

చూడండి మనం బాగా ఆలోచించి చూస్తే ప్రపంచ పదార్థాల్లో నిజమైన సుఖం లేదని మనకు తెలుస్తుంది. ఉదా॥ ఒక లడ్డు తిన్నాం సుఖంగా ఉందిరెండు లడ్లు తిన్నాం ఫరవా లేదు. ఆశకొద్దీ ఒక కిలో లడ్లు తింటామను కోండి ఏమౌతుంది ? శరీరం రోగ గ్రస్తమౌ తుంది. బాధపడతాం. అలాగే ఎవరైనా పాటలు పాడుతున్నారనుకోండి ఒక పాట విన్నాం బాగుంది. రెండు పాటలు విన్నాం బాగుంది. అలాకాక రెండూ మూడు గంటలు కూర్చోబెట్టి మీకు పాటలు వినిపిస్తాను కూర్చోండి అని ఎవరైనా అంటారనుకోండి ఏమంటాం ? చాలు చాల్లేవయ్యా మాకింకేం పనుల్లేవా అని లేచి వెళ్ళిపోతాం. అంటే ప్రాకృతిక పదార్థాలను ఒక పరమితులో అనుభవించినపుడే అవి మనకు సుఖం కలిగిస్తాయి గాని, వాటిని విపరీతంగా అనుభవిస్తే దుఃఖాలు కలిగిస్తా యన్న మాట. అగ్గిపుల్ల గీచినపుడు కాసేపు వెలిగినట్లు పదార్థ సంయోగం చేత మనలో ఉండే సుఖం కాస్త అప్పుడప్పుడు బయట పడుతుంది. తప్ప నిజంగా ప్రపంచ పదార్థాల్లో సుఖం లేదు. ప్రపంచ పదార్థాల్లో నిజంగా సుఖం ఉంటే ఎంత ఎక్కువగా పదార్థాల ననుభవిస్తే అంత ఎక్కువ సుఖం కలగాలి గదా? కాని అలా కలగదే ! దుఃఖమే కలుగుతుంది. ఇలా తెలిసికొని విషయ సుఖాల ఎడల విముఖుడుగా ఉండడమే వైరాగ్యమనబడు తుంది.

మనం ఎంత సంపాదించినా-లక్షల కోట్ల రూపాయలు కూడబెట్టినా చనిపోయేటప్పుడు చిల్లి గవ్వ కూడ మన వెంట తీసికొనిపోలేం. మరెందుకీ తాపత్రయం ? ఎందుకీ వృధా ప్రయాస ! అయితే మన జీవనం సుఖంగా నడవడానికి, మనపైన ఆధారపడిన భార్యా బిడ్డలను వృద్ధులను పోషించడానికి అవసరమైన ధనాన్ని సంపాదించవలసిందే తప్పదు. కాని ధన సంపాదనే జీవిత లక్ష్యమనుకుంటే ఎలా ? తరతరాలు తిన్నా తరగని ధన సంపాదనలో ఆయువును వృధా చేసి ఏం ప్రయోజనం ? సమయమంతా ఇలా వృధా చేస్తే యోగసాధ నలు చేసేదెప్పుడు ? భగవదానం దాన్ని-మోక్షనందాన్ని పొందేదెప్పుడు ? అని ఇలా విచారించి వాస్తవాలను గుర్తించడమే వైరాగ్య మనబడుతుంది. భర్తృహరి యింకొక మంచి శ్లోకం చెప్పాడు చూడండి.

భోగా న భుక్తా వయమేవ భుక్తా స్తపో న తప్తం వయమేవ తప్తాః । కాలో న యాతో వయమేవయాతా స్తృష్ణా న జీర్ణా వ యమేవ జీర్ణాః ॥ -భర్తృహరి వై.శ.7శ్లో

'భోగాః నభుక్తాః -స్రక్ చందన స్త్రీ సేవనాది విషయ భోగాలను అనుభవించామని మేము అనుకుంటున్నాం కాని అది సరికాదు. నిజానికి భోగాల కొరకైన నిరంతర చింతన చేత, కాలమనే రాక్షసుడి చేత మేమే భక్షించబడ్డాం. **'తపోసతప్తం వయమేవతప్తాః'** -(చాంద్రాయణ వ్రతాన్ని ఆచరించే భక్తుడు తాను ఒక పూట తినే భోజనాన్ని 15 భాగాలు-15 ముద్దలు చేసి శుక్లపక్షం, కృష్ణ పక్షంలోని చంద్రుని కళలకు అనుకూలంగా భోజనాన్ని హెచ్చిం చుతూ తగ్గించుతూ తింటూ పోతాడు. పౌర్ణమి నాడు పూర్తిగా భోజనం చేస్తాడు. అమావాస్య నాడు అసలు భోజనం మానేస్తాడు. అంటే శుక్ల పక్షం పాడ్యమి రోజు (15 ముద్దల భోజనంలో) ఒక ముద్ద తగ్గించి తింటాడు. విదియ నాడు రెండు ముద్దలు తగ్గించి తింటాడు. ఇలా క్రమక్రమంగా ఒక్కొక్క ముద్ద తగించుతూ పోయి అమావాస్యనాడు అసలు అన్నం తినడం మానేస్తాడు. రోజుకు రెండు పూటలు భోజనం చేస్తాం గనుక రెండు పూటలు ఈ వ్రతాన్ని ఆచరించుతూ ఉంటాడు. ఇలా ఒక నెల రోజుల పాటు ఆచరించడాన్ని చాంద్రాయణ వ్రతం అంటారు. ఇలా అప్పుడప్పుడు ఆచరించడం వల్ల మనస్సు, ఇంద్రియాలు శరీరం క్రమక్రమంగా శుష్కించి బలహీనమైన అవి తమ అదుపులో ఉంటాయనే నమ్మకంతో పూర్వులు ఇలాంటి కఠిన వ్రతాలను ఆచరిస్తుండేవారు. ఇది ఒక రకమైన తపస్సని వారు భావించేవారు.) చాంద్రాయా ణాది ఉపవాన వ్రతాలతో గాని, సత్కార్యాచరణ అనే తవస్సుతో గాని మేము తవింప-దుఃఖపడలేదు కాని ఆధ్యాత్మిక, ఆధి భౌతిక, ఆధి దైవిక తాపత్రయాలచే మేమే తప్తాః తవింపబడ్డాము (ఆధ్యాత్మిక తావము అంటే-మన శరీరంలో కలిగే జ్వరాదిపీడలు, మానసిక వ్యాధులతో దుఃఖ పడడం, ఆధిభౌతిక తావములు అంటే- ఇతర ప్రాణులచేత-శత్రువులు, క్రూరమృగాలు, విష సర్పాలు, క్రిమికీటకాదుల చేత మనం బాధలు అనుభవించడం, ఆధిదైవిక తాపాలు- అంటే భూమి, జలము, అగ్ని, వాయువు మొదలైన దేవతల చేత మనకు కలిగే దుఃఖాలు ఉదా॥ భూకంపాలు, వరదలు, అగ్నిప్రమా దాలు, గాలివానలు, అతివృష్టి, అనావృష్టి, పిడుగులు మొదలైన వాని చేత దుఃఖాలు అనుభవించడం) **'కాలో నయాతా వయమేవ యాతా'**-కాలం గడిచిపోయింది అని అనుకుం టున్నాంకాని జీవింపవలసిన కాలం జీవించి అవసాన కాలం సమీపించి మేమే పోబోతున్నాం- చని పోతున్నాం. **'తృష్ణాన జీర్ణా'**- ఆశ శిథిలం కాలేదు క్షీణించలేదు **'వయమేవ జీర్ణాః'**-మేమే క్రమక్రమంగా శిథిలమై క్షీణించి చనిపోతున్నం అన్నాడు. ఇది గ్రహించి ఆశాపా శాదులను త్యజించి, భగవదాయత్త చితులై మోక్షానందాన్ని పొందే ప్రయత్నం చేయ మన్నాడు. భర్తృహరి.

మానవజీవితం ఎలా వృధా అవుతున్నది :-

అయితే మానవులు భగవత్ సాక్షాత్కారం పొంది ఆనందం అనుభవించడానికి అవసర మైన యోగసాధనలు చేయడానికి సమయమెక్క డుంది అంటూ మానవజీవితం ఎలా వృధా అవుతుందో మరొక శ్లోకంలో రమ్యంగా వర్ణిం చాడు భర్తృహరి చూడండి.

ఆయుర్వర్షశతం నృణాం పరిమితంరాత్రౌ తదర్ధం గతం । తస్యార్ధస్య పరస్య చార్ధమపరం బాలత్వవృద్ధత్వయోః ।

శేషం వ్యాధి వియోగ దుఃఖ సహితం సేవాదిభిర్నియతే । జీవేవారితరంగ చంచల తరే సౌఖ్యం కుతః ప్రాణినామ్ ॥

-భర్తృహరి వై.శ.49

మానవులకున్న నూరేండ్ల ఆయుష్షులో సగం (50 ఏండ్లు) రాత్రి రూపంలో గడిచి పోతుంది. మిగిలిన 50 ఏండ్లలో సగం (25 సం॥లు) ఏమీతెలియని బాల్యావస్థలోనూ శక్తి ఉడిగిన వృద్ధావస్థలోనూ గడచిపోతుంది. ఇక మిగిలిన 25 ఏండ్ల కాల్ వ్యాధులు. వియోగాలు (ఎడ బాటులు) దుఃఖాలతో కూడినదై **'సేవాదిభిర్ నీయత్'** -ఉద్యోగాలు, వ్యాపారాలు, వ్యవ సాయం మొదలైన విధుల నిర్వహణలో గడిచి పోతుంది. **'వారి తరంగ చంచల తరేజీవే'** -నీటి అలల వలె మిక్కిలి అస్థిరమైన బ్రతుకులో, **'ప్రాణినాం సౌఖ్యంకుతః'**-జనులకు సుఖమెక్క డిది ? లేదు అన్నారు భర్తృహరి.

అయితే స్థూలంగా చూచినపుడు పైన చెప్పింది నిజమనిపించినా సూక్ష్మంగా విచారించినపుడు భగవంతుణ్ణి పొందడానికి యోగ సాధనలు చేయడానికి అవసరమైన సమయం మనకు లేకపోలేదు. చూడండి, భగవంతుడు మనకు రోజులో 24 గంటల సమయం ఇచ్చాడు. అందులో 6 గంటలు నిద్రకు తీసి వేయండి. కాలకృత్యాలకు, స్నానానికి, ఉదయం టిఫిన్ తినడానికి, రెండు పూటలు భోజనానికి 3 గంటల సమయం తీసివేయండి. ఆరున్నూ మూడు తొమ్మిది గంటలయింది. ఉద్యోగం లేదా వ్యాపారం చేయడానికి, లేదా వ్యవసాయం మొదలైన వృత్తి పనులకు 8 గంటలు తీసి వెయ్యండి. తొమ్మిదిన్నూ ఎనిమిది 17 గంటలయింది. తరువాత న్యూస్ పేపరు (వార్తా పత్రికలు) చదవడానికి ఒక గంట, పోనీ టి.వీలో సినిమా చూడడానికి 2 గంటలు, మధ్యాహ్నం కాస్తవిశ్రాంతి తీసికోవడానికి ఒక గంట మొత్తం కలిపి 21 గంటలయింది. ఇంకా 3 గంటల సమయం మిగిలే ఉంది. ఈ సమయంలో మన శరీర ఆరోగ్యం కోసం ఒక అరగంట ఆసనాలు వేయవచ్చు, ఒక గంట స్వాధ్యాయం (సద్గ్రంథ పఠనం) చేయవచ్చు. ఒక అరగంట యజ్ఞం చేయవచ్చు. సంధ్యా వందనం 10 ని॥లు, ప్రాణాయామం 10 ని॥లు గాయత్రి జపం 20 ని॥లు ప్రణవ ధ్యానం 20 ని॥లు. అన్నీ ఈ మూడు గంటల్లో చేయవచ్చుగదా ? ఆధ్యాత్మికంగా అభివృద్ధి పొందడానికి అతి ముఖ్యమైన వీటిని మనం ఆచరించుతున్నామా ? లేదే ! మరి చివర మిగిలిన ఈ 3 గంటల సమయాన్ని ఏం చేస్తున్నాం ? ఉబుసుపోకకు కబుర్లు చెప్పుకోడం లోనూ, టి.వీలో పాటలు, డ్యాన్సులు చూడడం లోనే గడిపేస్తున్నాం. ఇవ్వాళ టి.వీల వల్ల ఎంత సమయం వృధా అవుతుందో, మనకు ఎంత నష్టం జరుగుతుందే చెప్పడానికి వీల్లేదు. పిల్లలు చదువులు చెడగొట్టుకొని టి.వీలు చూస్తున్నారు. పెద్దలు ఆధ్యాత్మిక సాధనలు వదిలేసి టి.వీలకు అంటి పెట్టుకొని కూర్చుంటున్నారు. నిజానికిది టి.వి. కాదు మనల్ని చెడగొట్టే టి.బి. (క్షయరోగం) అనాలి ! ఇక మనుషులు బాగుపడేదెలా ? టి.వి. అసలు చూడవద్దని నేనను. టి.వి.లో వార్తలు వినండి. ఆరోగ్య విషయాలు వినండి. సైన్సు విషయాలు, ఆధ్యాత్మిక విషయాలు వస్తే వినండి. ఎప్పుడైనా మంచి సినిమా–జీవిత విలువల్ని ప్రోది చేసే (పోషించే) సినిమా వస్తే చూడండి. అంతేగాని ఎప్పుడూ టి.వి.కి దాసులమైతే ఎలా ? ఇవ్వాళ టి.వి.లో వచ్చే సినిమాలు ఎలా ఉంటున్నాయి? త్రాగడం, తందనాలాడ్డం, పేకాడ్డం, డ్యాన్సులు, ముద్దులు, కౌగిలింతలు, కొట్టుకోడం, తన్నుకోడం, హత్యలు, మానభంగాలు వీటినేగా టి.వీల్లోచూపించేది. వాటిల్లో మంచి విషయం 10 పాళ్ళుంటే చెడ్డ 90 పాళ్ళు చూపిస్తున్నారు. ఇలాంటి సినిమాలు చూచి పిల్లలేం బాగుపడ తారు ? పెద్దలకు మనో నిగ్రహం ఎలా కలుగుతుంది చెప్పండి ? ఇది మనం బాగా ఆలోచించాలి. అందుచేత మనం మానవ జీవితం సఫలం కావడానికి అవసరమైన ఆధ్యాత్మిక సాధనలకు ఎక్కువ సమయం కేటాయించాలిగాని, నిరుపయోగ మైన వాటికి సమయం దండుగచేయకూడదు. సమయం అమూల్యమైనది. 'Time is money'–సమయం ధనం వంటిదన్నారు పెద్దలు. డబ్బుపోతే మళ్ళీ సంపాదించుకోవచ్చు కాని గడిచిపోయిన సమయం మళ్ళీతిరిగి రాదు కదా ? కనుక మనం 'Time conscious' కలిగి సమయాన్ని ఎలా వినియోగిస్తున్నామో గమనించుతూ ఉండాలి. మన పూర్వులు ప్రతిరోజూ మనం సమయాన్ని ఎలా వినియోగించాలో ఒక టైం టేబులు చెప్పారు చూడండి.

బ్రహ్మముహూర్తంలో నిద్రలేచే వారే ఏదైనా సాధిస్తారు :-

బ్రాహ్మేముహూర్తేబుద్ధ్యేత ధర్మార్థౌచాను చింతయేత్ । కాయక్లేశాంశ్చ తన్మూలాన్‌వేద తత్త్వార్థమేవచ ॥ –మనుస్మృతి 4-92

'బ్రాహ్మే ముహూర్తే బుద్ధ్యేత' –బ్రహ్మముహూర్తమంటె ఉదయం 4 గంటలకు నిద్ర నుండి లేవమన్నాడు మనువు. లేచి 'ధర్మార్థౌచాను చింతయేత్' –ఆరోజు చేయవల సిన ధర్మ సంబంధమైన సత్కార్యాలేమిటో, ఆర్థికపరమైన కార్యాలు (Duties) ఏమిటో మొదట మనసులో ఆలోచించుకోమన్నాడు. 'కాయ క్లేశాంశ్చతన్మూలాన్' –ఒకవేళ శరీరంలో ఏవైనా బాధలుంటే (శరీరం అనారోగ్యంగా ఉంటే) అందుకు కారణాలేమిటో తెలిసికొని వాటిని నివారించుకొని ఆరోగ్యాన్ని కాపాడు కోమన్నాడు. 'వేద తత్త్వార్థ మేవచ' –అనంతరం పరమేశ్వర సాక్షాత్కారానికి అవసరమైన తత్త్వ చింతన, యోగాభ్యాసాదులు చేయమన్నాడు మనువు. ఇలా మనంరోజూ సమయాన్ని ఎలా సద్వినియోగం చేసికోవాలో మన పూర్వులు మనకు తెలియజెప్పారు. కాని మనం పెందల కడ నిద్ర నుండి లేస్తున్నామా ? లేదే. ఉదయం ఆరు, ఏడుగంటల వరకు నిద్రపోతూనే ఉంటాం. ఇక మనకు అభివృద్ధి ఎలా కలుగు తుంది చెప్పండి. ఇంగ్లీషులో కొన్ని మంచి సామెతలున్నాయి. పెందలకడ నిద్రలేస్తే కలిగే ఉపయోగాలేమిటో అవి చెబుతాయిచూడండి. 'Early to bed and early to rise makes man healthy, wealthy and prosperous' పెందలకడ పడుకొని పెందల కడ నిద్ర లేవడం మనిషికి ఆరోగ్యాన్ని, సంపదను, అన్ని రంగాల్లో అభివృద్ధిని కూర్చుతుంది. 'In the mouth of morning hours there is gold' ఉదయ కాలపు సమయం నోట్లో బంగార ముంది' అన్నారు. ఉదయం నిద్ర నుండి లేచినపుడు మన శరీరం, మనస్సు నిద్రలో బాగా విశ్రాంతి పొంది ఉల్లాసంగా ఉంటాం. అపుడు చదువుకునే చదువు బాగా ఒంట బడుతుంది. చేసే భగవధ్యానం శ్రద్ధతో ఏకాగ్రచిత్తులమై చేయగలుగుతాము. విద్యార్థులు వారి పాఠాలను వల్లించి సులభంగా కంఠస్థం చేయగలుగుతారు. రచయితలు మంచి మంచి భావాలతో తమ రచనలు చేయగలుగుతారు. కనుక ఉదయ కాలపు సమయంలో బంగారం ఉన్న దనడంలో అసత్యమేముంది ! పెందలకడలేచే వ్యాపారస్థులు ఉద్యోగులు, విద్యార్థులు, వ్యవసాయదారులు మొదలగువారు కాలకృత్యాలు త్వరగా తీర్చుకొని స్నానాదులు ఆచరించి అల్పాహార్ తీసికొని పెందలకడనే ఎవరి విధుల్లోకి వారు వెళ్ళితే వారికి ఎంతో అభివృద్ధి కలుగుతుంది. 'The early bird catches its prey' –పెందలకడ మేల్కొనే పక్షికి ఆహారం బాగా దొరుకుతుంది అన్నారు. ఆలస్యంగా లేచే పక్షికి ఆహారం సరిగా దొరకదు. కారణం అంతకు ముందే లేచిన పక్షులు గింజ గింట్రా ఏరుకొని తిని వెళ్ళి పోతాయిగదా ? అందుకని. కనుక మనంపెందలకడ బ్రహ్మముహూర్తంలో ఉదయం 4 గంటలకు నిద్రలేవటం మొదట అలవాటు చేసికోవాలి. అప్పుడే మనం జీవితంలో ఏదైనా సాధించడానికి వీలవుతుంది. చూడండి మన భారత ప్రధాని స్వ. శ్రీమురార్జీ దేశాయ్ రాత్రి 10 గంటలకు ఖచ్చితంగా నిద్రపోయేవాడు. 10 గంటల తరువాత ఎవరైనా సెక్రటరీలు అర్జంటు పని ఉందని, సంతకాలు కావాలని వస్తే వాళ్ళను నిర్మొగ మాటంగా వెనక్కుతిరిగి పంపేవాడు. రేపు ఉదయం రమ్మనేవాడు. తెల్లవారి 3 గంటలకే ఆయన నిద్రలేచేవాడు. కాల కృత్యాలు తీర్చుకొని, భగవధ్యానం చేసికొని భగవద్గీత

మిగతా 26వ పేజిలో.....

ब्रह्मणोऽस्यमुखमासीद्, बाहू राजन्यः कृतः । उरू तदस्य यद् वैश्यः, पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।

(ऋग्वेद १०।९०। १२, अथर्ववेद १९।६।६, यजुर्वेद ३१।११, तैत्तिरीय आरण्यक ३।१२।५)

अन्वय : अस्य मुखं ब्राह्मणाः आसीत् । अस्य वाहु राजन्यः कृतः । अस्य तद् उरू यद् वैश्यः । पद्भ्यां शूद्रः अजायत ।

अर्थ : (अस्य) इस पुरुषका (मुखं) मुख ब्राह्मण (आसीत्) हो गया । (अस्य बाहु) इसके दोनों बाहु (राजन्यः) क्षत्री (कृतः) मान लिये गये । (अस्य तद् उरू) इसकी वही दोनों जांघे समझिये (यद् वैश्यः) जो वैश्य है । (पद्भ्याम्) दो पैरों से अर्थात् दो पैरों की कल्पना, भावना या उपमा से (शूद्रः अजायत) शूद्र उत्पन्न हो गया ।

व्याख्या- यह मंत्र उन थोड़े से वेदमंत्रों मे से है जिससे अधिक से अधिक लोग परिचित हैं । हिन्दुओं में जो वर्तमान जाति-भेद, छूतछात, ऊंच-नीच, वर्गद्वेष फैला हुआ है उसका आधार यही मंत्र समझा जाता है । परन्तु यदि कल्पित गाथाओं को सर्वथा भुलाकर केवल मन्त्रों पर ही विचार किया जाय तो यह वेदमंत्र वैदिक समाज शास्त्र का बड़ा उत्कृष्ट सुदृढ़ आधार सिद्ध होगा । मलाई कीचड़ में पड़कर मल बन जाती है । सोना मूर्खों के स्वत्व में आकर मैला पड़ जाता है । औषधि कुवैद्य के हाथ में पड़कर विष बन जाती है । ये सब अविद्या के परिणाम हैं । और यह मंत्र दुर्भाग्य से उन परिणामोंका एक जीता-जागता नमूना है जिसने हिन्दू जाति को नष्ट और हिन्दू सभ्यता को कलंकित कर दिया । इस मंत्र का लोक-परिचित अर्थ यह है-प्रजापति के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुये, भजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य और पैरों से शूद्र । इसलिये ब्राह्मण सबसे ऊंचे और शूद्र सबसे निकृष्ट है । इसीलिये शूद्र अछूत समझे जाते है और उनको बहुत से वहअधिकार नहीं हैं जो ब्राह्मण आदि को हैं । यदि कोई पूछे कि आजकल तो ब्राह्मण मुख से उत्पन्न नहीं होते, न क्षत्रिय बाहू से, न वैश्य जंघाओं से, न शूद्र पैरों से । आजकलतो सब का उत्पत्ति-स्थान तथा उत्पत्ति-विधान समान है, फिर यह भेदभाव क्यों ? तो इसका यह उत्तर दिया जाता है कि आदि सृष्टि में ऐसा ही हुआ था । अब जन्म-जन्मान्तरों से वही पूर्वजों का दोष सन्तति में भी चला आता है और अन्तकाल तक चलता जायगा । इस प्रतिपत्ति की पुष्टि में न तो कोई तर्क था न इतिहास की साक्षी । परन्तु जब एक मत वायुमंडल में फैल गया तो भाष्यकारों ने भी किसी न किसी प्रामाणिक अथवा अप्रामाणिक ग्रंथ के कुछ कथनों को बिना किसी परीक्षा के अपने भाष्यों का आधार बना लिया । श्री सायणाचार्य ने लिखा है-"इयं च मुखादिभ्यों ब्राह्मणादीनामुत्पत्तिर्यजुः संहितायां सप्तमकाण्डे समुखतः त्रिवृतं निरमिमीत" (तैत्तिरीय संहिता ७।१।१।४) इत्यादौ विस्पष्टमान्माता" अर्थात् कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में स्पष्ट शब्द प्रमाण है कि "प्रजापति ने मुख से तीन वर्णों का निर्माण किया ।" जब जनता में यह प्रसिद्ध कर दिया जाता है कि अमुक बात उनके धर्म-ग्रंथों में लिखी है तो जनता घोर से घोर पाप की भी पुण्य समझ कर उस पर आरूढ़ हो जाती है । धर्म-ग्रंथों को आंख बन्द करके मान लेने का यह अत्यन्त दोषपूर्ण परिणाम है । इस युग में ऋषि दयानन्द ऐसे महापुरुष हुये हैं जिन्होंने धर्म-ग्रंथों के परीक्षण को भी आवश्यक बताया । और 'ब्राह्मणोऽस्य' इस मंत्र के तर्कयुक्त उत्तम अर्थ हमारे सामने उपस्थित किये । यह बात नहीं कि अन्य भाष्यकारों को उन प्रचालित मतों की निस्सारता खटकती न थी । भाष्यकार बुद्धिहीन तो न थे। विद्वान् थे, मन में समझते रहे होंगे कि ऐसी थोथी बात को कैसे मान्यता दी जाय । मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति का अर्थ हीक्या हो सकता था । परन्तु बहुत प्राचीन काल से यह रोग चला आता है कि धार्मिक बातें परोक्षहै, उनमें बुद्धि लड़ाना पाप है । यह बीमारी इस्लाम, ईसाई, बौद्ध, जैन सबमें पाई जाती है । इसको छोड़ने का साहस नहीं होता । इससे पहले मंत्र (ऋग्वेद ९०।११) के भाष्य में सायणाचार्य ने 'व्यदधुः' का अर्थ किया है "संकल्पेनोत्पादितवन्तः ।" अर्थात् ऐसा मान लिया गया कि ब्राह्मण मुख है । "कौचपादावुच्येते" (पैर किनको कहोगे ?) यहां प्रश्न यह नहीं कि शूद्र कहां से उत्पन्न होते हैं, अपितु शूद्र किसको कहते हैं । 'उच्येते' वेदमंत्र का शब्द है और उसको सावधानी से याद रखना चाहिये । ११वें मंत्रके इसी प्रश्न के उत्तर में १२वें मंत्र का उत्तर है "पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ।" महीधर ने यजुर्वेद के भाष्य में भी 'उच्येते' का अर्थ किया है "पदावपिकि सास्ताम्" । इस प्रकार बात तो सबको खटकती रही । परन्तु तर्क का प्रयोग करने से डरते रहे कि कहीं जनता की मान्यताओं को ठेस न लग जाय और समाजके ढांचे में उथल-पुथल करनी पड़े । आज के परिवर्तित युग में भी वह धुकधुकी अब भी बनी हुई है । विचार-यात्रा के बीच में यह एक बड़ा रोड़ा था । इसीलिये हमने आवश्यक समझा कि इसको हटा दिया जाय जिससे मंत्र की व्याख्या करने में सुगमता हो सके ।

मंत्र के महत्त्व को समझने के लिये एक और आवश्यक बात यह है कि मंत्र के प्रकरण कर विचार करना चाहिये । यह मंत्र पुरुषसूक्त का एक भाग है और थोड़े से आधारण पाठ-भेद या क्रम-भेद से ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में आया है । पुरुषसूक्त में क्या है । यह देखना होगा ।

पुरुषसूक्त पूराका पूरा लुप्तोपमा अलंकार है । केवल एक उपमा नहीं अपितु उपमाओं

की एक शृंखला। जिसमें सब उपमायें एकदूसरे से सम्बद्ध हैं। 'पुरुष' का अर्थ है 'शरीर'। केवल भौतिक शरीर नहीं। क्योंकि भौतिक शरीर तो जड़ है। जीवात्मा-युक्त शरीर। जिसको लोक-भाषा में कहते हैं-जिंदा, जीता-जागता। क्योंकि बिना शरीरीके शरीर नहीं होता। शरीरी के पृथक् हो जाने पर शरीर शरीर नहीं कहलाता। लाश कहलाती है। शरीर वही है जिसमें जीवात्मा पूर्णरूपेण जाग्रत या कार्य करता हो। (A body is a body only so long as the soul therein is functioning in full vigour)। 'शरीर' शब्द की सिद्धि संस्कृत-वैयाकरणों ने 'शृ हिंसायाम्' धातु से की है। यह मुझे सर्वता अनुचित प्रतीत होती है। धातु और धातुज शब्द में कुछ तो सम्बन्ध आवश्यक है। यह आवश्यक नहीं है कि वर्तमान धातुपाठ पूर्ण ही हो या वर्तमान व्याकरणों से जो सिद्ध होता है वही हर अवस्था में लागू हो। ब्राह्मणों और आरण्प्रकों में कतिपय शब्दों की ऐसी व्युत्पत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं जो पाणिनि अथवा अन्य ज्ञात वैयाकरणों के सूत्रों से सिद्ध करना असंभव है। न्यायदर्शन में शरीर के यह लक्षण किये हैं- **"चेष्टेन्द्रिया थश्रियः शरीरम्"** (न्यायदर्शन १-१-११) "चेष्टा-इन्द्रिय-अर्थ का जो आश्रय हो वह शरीर है।" मेरी ऐसी भावना है कि शरीर का लक्षण करते समय सूत्रकार के मस्तिष्क में कोई ऐसी धातु रही होगी जिसका सादृश्य **आश्रय** शब्द से रहा होगा। इस कल्पना के लिये मेरे पास कोई लिखित प्रमाण नहीं। परन्तु अनुमान यही कहता है। इसी प्रकार पुरुषसूक्त में पुरुष शब्द का अर्थ शरीर है परन्तु ऐसा शरीर जो चेष्टा-इन्द्रिय-अर्थ का आश्रय हो। पुरुष का यह नाम इसलिये है कि वह पुर में सोता या निवास करता है। समस्त पुरुषसूक्त में इस प्रकार के शरीर की उपमा दी गई है। कहीं तो साधर्म्य प्रत्यक्ष है, कहीं परोक्ष, परन्तु है अवश्य। संसार और पुरुष अर्थात् शरीर में साधर्म्य क्या है। सनैर कई ऐसे अवयवों या वस्तुओं का संघात नहीं जो असम्बद्ध हों। शरीर एक संस्थान या आगेनिज्म (Organism) है। अर्थात् इसका हर एक अंग अपने और अंगों के संरक्षण में सहायक होता है। आँख अपना भी संरक्षण करती है और शरीर का भी। भोजन को पचाने वाले अंग (Digestive organs) शरीर को भी शक्ति देते हैं और स्वयं अपने को भी। क्योंकि इनमें पुरुषत्व या शरीरत्व है। रेल का इंजन भाप बनाता है परन्तु भाप उस इंजन को शक्ति नहीं देती। जितनी अधिक भाप बनेगी इंजन घिसेगा और कमज़ोर होगा क्योंकि इंजन पुरुष नहीं है। परन्तु हमारा जठर रुष का अंग है। खाना न पाने से जठर ही नष्ट होगा और समस्त शरीर भी। वह एक विचित्र गुण है जो 'पुरुष' अर्थात् शरीर में ही पाया जाता है।

इस अपमा को जब हम जगत् पर घटाते हैं तो जगत् के पुरुषत्व का महत्व हमारे हृदय पर अंकित होने लगता है। वेद ने कहा :- 'सहस्त्रशीर्षा पुरुषः'। सायण ने इसकी यह व्याख्या की है :-

सर्वप्राणि-समष्टिरूपी ब्रह्माण्डदेहो चिराडाख्यो यः पुरुषः सोऽयं सहस्त्रशीर्षा। सहस्त्रशब्दस्योपलक्षणत्वादनन्तैः शिरोभिर्युक्तः इत्यर्थः। यानि सर्वप्राणिनां शिरांसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तः पातित्वात् तदीयान्येवेति सहस्त्र शीर्षत्वस्"

इस स्थल पर सायण का यह उद्धरण हमने इसलिये दिया है कि जो बालबुद्धि लोग इस मंत्र के आधार पर रावण के दश शिरों की भांति ईश्वर के एक हज़ार सिर मानते हैं वह भूल करते हैं। परन्तु यहां हमारा मुख्य प्रयोजन यह है कि पुरुष की उपमा देकर वेदमंत्र इस सूक्ष्म रहस्य को व्यक्त करता है किजैसे शरीर एक पुरुष या आगेनिज्म है, उसी प्रकार जगत् भी एक आर्गेनिज्म है, जिसका हर भाग जगत् के रक्षण में भागीदार है। समस्त पुरुषसूक्त में आदि से लेकर अन्त तक किसी न किसी रूप में लुप्तोपमा का महत्त्व दर्शाया गया है

परन्तु 'ब्राह्मणोऽस्य मुखं' इस मंत्र में जगत् के अन्य अंगों से हटकर विशेषतः मानव-समाज को पुरुष माना गया है। और उसी के प्रत्येक अंग का पूरे मानव-समाज से सम्बन्ध दिखाया गया है। इसके दो पक्ष हैं। एक तो प्रत्येक अंग का दूसरे अंगों से भिन्न होना। दूसरा हर अंग का दूसरे अंगों का **पूरक** होना। 'भिन्नत्व' और 'पूरकत्व दोनो को एक साय समझने की आवश्यकता है। जिस भिन्नत्व में पूरकत्व नहीं वह पुरुष का अंग नहीं। शरीर में दो आंखें हैं। यह दो हैं। भिन्न-भिन्न हैं। दाहिनीं आंख अलग, बाई अलग। परन्तु दाहिनी बाई के रूप के यथेष्ट प्रदर्शन में पूरक है। काना आदमी दो आंखों वाले के समान नहीं। इसी प्रकार हर अंग का हाल है। जब मानव-समाज को विराट् रूप देकर पुरुष कहा गया तो उसके अंग गिनाये गये। उनके भिन्नत्व पर बल देने के लिए नहीं, अपितु पूरक होने पर। शरीर को पुरुष तभी तक कहहेंगे जब तक कि इसके अंग दूसरे अंगों के पूरक हैं। यदि एक अंग दूसरे की पूर्ति नहीं करता तो वह या तो रोगों शरीर है या मृत शरीर। दो ही अवस्थायें है जब शरीर के अंगों में सहयोग नहीं रहता। एक रोग दूसरा मृत्यु। रोग भी मृत्यु न सही मृत्यु का सेनाषति सही। यदि एक सुन्दर स्त्री या पुरुष के सुन्दर अंगों को काट-काटकर अलग शीशों में रख दिया जाये तो उसे कौन सुन्दर कहेगा। शरीर के सब अंगों के योग या जोड़ का नाम शरीर नहीं है। अवयवों के संघात का नाम अवयवी नहीं है। न्यायदर्शन का एक सूत्र है "न चावयव्यवयवाः" (न्यायदर्शन ४-२-८) यदि केवल अवयवों के संख्या-सम्बन्धी जोड़ का नाम ही अवयवी होता तो अवयवों की विशेष व्यवस्था न होती। इसी प्रकार समाजरूपी पुरुष के अंग भी सुव्यवस्थित होने चाहियें जैसे स्वस्थ शरीर के अंग होते हैं। समाज-शास्त्र इसी व्यवस्था का तंत्र है। मनुष्यों की गिनती से समाज नहीं बनता। यदि किसी शरीर का सिर कट जाय तो यह नहीं कह सकते कि दस अंगों में एक ही अंग तो कटा है, अतः ९/१० भाग अवयवों के उपस्थित रहते हुए शरीर भी ६/१० सुरक्षित होगा क्योंकि सिर के कटने से व्यवस्था टूट गई। जब आप वेदमंत्र को इस दृष्टि से देखेंगे कि यह

पुरुष-सूक्त का अंग है और पुरुष का अर्थ है सुव्यवस्थित अंगों वाला शरीर । तो इस मंत्र की उपयोगिता समझ में आ सकेगी । मंत्र में मानव-पुरुष या मानवविराट् के अंगों की गिनती नहीं गिनाई गई । यह अंगों का सूचीपत्र (Catalogue) नहीं है जिसमें कहा हो कि समाजरूपी दुकान पर एक सिर या ब्राह्मण हैं । दूसरे बाहू या क्षत्रिय हैं । यहां प्रत्येक अंग की इतिकर्त्तव्यता का विधान है । मानव-शरीर पर दृष्टि डालिये । उपमा के साधर्म्य को सोचिये । भोजन हमारे हृदय में शुद्ध रक्त बनाता है । इसरक्त के जो बिन्दु मस्तिष्क में पहुँच जाते हैं वह मस्तिष्क का कार्य करने लगते हैं, जो पैर की उंगली में पहुंचते हैं वह पैर बन जाते हैं । रक्त शुद्ध होना चाहिये । जब डॉक्टर बताता है कि बादाम खाओ, आंख की रोशनी बढ़ेगी, तो उसका यही तो अभिप्राय होता है कि बादाम से जो रक्त बनेगा वह आंख में जाकर आंख बन जायगा । इस उपमा को आप सब क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं पर घटा लीजिये ।

अब आप वेदमंत्र आइये । लोगों ने मूर्खता से यह समझा कि शरीर के अंगों की भिन्नता दिखाई गई है । अर्थात् वर्ण चार हैं । वह एक दूसरे से भिन्न है । पूरक नहीं । अतः ब्राह्मण अलग हो गये । क्षत्रिय अलग हो गये । वैश्य अलग और शूद्र अलग । एक दूसरे से सम्पर्क नहीं, प्रत्येक अंग अपनी ही रक्षा के लिए प्रयत्नशील हुआ । परस्पर सहयोग जाता रहा । हिन्दू समाज की प्रचलित वर्ण-व्यवस्था में यही दोष है । नाम के लिए चार वर्ण हैं । परन्तु वह हैं अलग-अलग । अर्थात् हिन्दू-समाज स्वस्थ समाज नहीं । रुग्ण समाज है या मृतप्राय समाज । वेदमंत्र का यह कदापि शाशय नहीं था ।

दूसरी भूल यह हुई कि वाक्यमें जो उद्देश्य था उसको विधेय समझ लिया गया । वाक्य या 'अस्यमुखं ब्राह्मण आसीत्' अर्थात् मानव समाजरूपी विराट् पुरुष का जो मुख्य भाग होगा उसका नाम हम 'ब्राह्मण' रक्खेंगे इत्यादि । परन्तु हमने इसका अर्थ लिया कि जो ब्राह्मण कहलाता होगा उसको हम समाजका मुखिया कहेंगे । इन दोनों की भावनाएं बदल जाती हैं । जो वैद्य का काम करने योग्य होगा और जो उस काम को योग्यता से करेगा उसको हम वैद्य कहेंगे । यह भावना सुव्यवस्था की सूचक है । जिसका नाम वैद्य होगा उससे हम वैद्य का काम लेंगे । यह भावना कुव्यवस्थित समाज की है । वर्तमान हिन्दू-समाज वर्णव्यवस्थाहीन है । और जो कुछ सम्प्रदाय अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए 'वर्णधर्म', 'वर्णधर्म' की दुहाई देते है वहदूषित विचारों का प्रचार करते हैं । जन्म से वर्णव्यवस्था मानने का यही दोष है । सबसे भयानक और घातक भावना यह है कि चार वर्ण प्रजापति के चार अंगों से उत्पन्न हुये । ११ वें और १२ वें दोनों मंत्रों के शब्दों को मिलाइये । ११ वें मंत्र में पादों के साथ 'उच्येते' (पुकारे जाते हैं) क्रिया है । यही क्रिया मुख, वाहू और उरू के साथ भी लगेगी । १२ वें मंत्र में आसीत्, कृतः यह दो क्रियायें हैं । वैश्य के साथ भी 'आसीत्' ही लागू होती है । केवल चौथी शूद्र के साथ 'अजायत' और पंचम्यन्त 'पद्भ्यां' शब्द आये हैं । इनको पहले मंत्र के 'व्यवकल्पयन्' और 'उच्येते' के साथ पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार मनुष्य माता की योनि से उत्पन्न होता है ऐसा अर्थ नहीं हो सकता । और न इस भावना का कोई बुद्धि-संगत आधार है । यहां तो तात्पर्य यह है कि मनुष्यों की भिन्न-भिन्न प्रकृतियों (गुण, कर्म और स्वभाव) तथा उनमें से हर एक का मानव-समाज रूपी स्वस्थ शरीर के रक्षण का उत्तरदायित्व दृष्टि में रखकर ऐसी व्यवस्था करनी आवश्यक है कि समष्टि रूप से मानव-समाज उन्नति करता रहे और इसमें रोग न होने पाये । इसकी सबसे अच्छी उपमा शरीर या पुरुष से दी दी जा सकती थी । इस भावना के लिए इससे अच्छी उपमा मिलनी कठिन थी । रोम के इतिहास में एक घटना वर्णित है । एक बार रोम की सेना में विद्वेष की अग्नि भड़क उठी । उसके नेता (इस नेता का नाम शायद Marcus Vespanius Agrippa (मार्कस वैस्पेनियस अग्रिपा) था । ने सबको बुलाकर उपदेश दिया कि भाइयो, तुम सब एक शरीर हो । शरीर तभी उन्नति करेगा जब तुम अपने को इस शरीर का अंग समझकर एक दूसरे के पूरक और सहायक बनो । इस उपमा को सुनकर लोग फड़क उठे । उन्होंने पहले कभी यह उपमा सुनी न थी । परन्तु वेद में तो यह उपमा न जाने कितने काल से चली आती है । ईरान के प्रसिद्ध कवि, सादी शोराजी ने कहा है "बनी आदम आज़ाये यक दीगरन्द" अर्थात् मनुष्य परस्पर एक दूसरे के अंग हैं । अंग कहने का अर्थ ही यह है कि वे पूरक या सहायक हैं । आंख स्वयं ही नहीं देखती पैर और हाथ को भी देखने के यग्य बनाती है । आंख की सहायता से हाथ मीठे फल को पकड़ लेता है । तुलसीदास ने कहा, "गिरा अनयन, नयन बिनु बाणी" फिर भी गिरा नयन का काम करती है और नयन वाणी का । क्योंकि हैं तो दोनों एक पुरुषके ही अंग यापूरक । काव्य इसी का नाम है । वाणी और नयन दोनों मिलकर काव्य बनाते हैं और जहां इस सहयोग का अभाव है वहां काव्य तो नहीं । इसी प्रकार वेदमंत्रों का अर्थ न समझने के कारण हमारे समाज का सुकाव्य कुकाव्य बना हुआ है ।

यह वर्णव्यवस्था जिसे चातुर्वर्ण्य कहते हैं स्वतःसिद्ध नहीं अपितु समाज-कल्पित और समाज-शासित है । प्रत्येक व्यवस्था का ऐसा ही रूप होता है । स्वयंसिद्ध वस्तु के लिए न बिगाड़ का भय होता है न सुधार या संरक्षण की चिन्ता । स्वयंसिद्ध चीज़ मानवचिन्ता के क्षेत्र से बाहर की वस्तु है । मनुष्य का सिर कन्धों के ऊपर होता है । यह स्वयंसिद्ध बा है । किसीको इसमें हस्तक्षेप की गुंजायश नहीं है, न कोई चिन्ता करता है । परन्तु मुख-प्रक्षालन मानव-कल्पित और मानवःशासित वस्तु है अतः बचपन से इसकी शिक्षा दी जाती है । इसी प्रकार मनुष्य-समाज के वर्गीकरण का प्रश्न है । इससे पहले मंत्र में स्पष्ट दिया है :-

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
(ऋ. १०-९०-११) जब इस मानव-समाज रूपी 'पुरुष' (Organism) की व्यवस्था की गई तो 'कतिधा' 'व्यकल्पयन्' कितने वर्ग किये । इस संकल्प या कल्प के दो लक्ष्यथे : व्यक्ति की रक्षा और समष्टि की रक्षा । व्यक्ति की रक्षाके लिए जीविका का प्रबंध सोचा गया और समष्टि की रक्षाके लिए व्यक्ति के कर्तव्य निर्धारित किये गये । इन दोनों भावनाओं के समन्वय का नाम

वर्णव्यवस्था है । इसी के सम्बन्ध में गीता का प्रसिद्ध श्लोक है-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः । (गीता ४-१३) यहां "शः" प्रत्यय गुण, कर्म और विभाग तीनोंके लिए आया है अर्थात् गुणशः, कर्मशः तथा विभागशः । चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था का प्रयोजन यह है कि समाज प्रत्येक व्यक्तिके गुणों (योग्यैता) का निरीक्षण करे । उसके अनुकूल उसके कर्म (कर्तव्यता) की नियुक्ति हो अर्थात् समाज प्रेरणा तथा आदेश द्वारा उससे अधिक से अधिक काम ले और उसके बदले विभाग (जीवन साधनों के विभाजन) का प्रबन्ध करे । अच्छा शासन (गवर्मेन्ट) उसको कहेंगे जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता की परीक्षा की जाती है । और उस योग्यता के अनुकूल उसको सामाजिक संगठन तथा संरक्षण का काम सौंपा जाता है । इसी का नाम है प्रजा का परिपालन । यह परिपालन केवल क्षत्रिय ही नहीं कर सकता । इस परिपालन में प्रत्येक छोटे-बड़े आदमी का हाथ है । समाज की गाड़ी को सभी मिलकर आगे बढ़ाते हैं । इसीका नाम तो सर्वतंत्र शासन (डिमाक्रेसी) है । सरकार का काम तो केवल यह प्रबन्ध करना है कि कोई व्यक्ति ऐसा न छूट जाय जो समाज की उन्नति में उचित मात्रा में भागीदार नहीं बनता, तथा यह भीदेखना है कि कोई भूखा तो नहीं मर रहा । जहां कहीं शास्त्रों में विधान है कि राज का कर्तव्य है कि चातुर्वर्ण्य की उचित व्यवस्था करे । वहां उसका यह तात्पर्य नहीं है कि थोड़े से वेदमंत्र सुनकर या एक लिखित परीक्षा लेकर यह घोषणा करदे कि तुम ब्राह्मण वर्ण के हो अपने नाम के आगे 'शर्मा' लगाया करो, तुम क्षत्रिय वर्णके हुए, तुमको 'वर्मा' लगाने का अधिकार हो गया । तुम वैश्य वर्ण के हो, तुमको अपने नाम के साथ 'गुप्त' लगाने का अधिकार है । राज ने तुमको शूद्र प्रमाणित किया है, तुम अपने को 'दास' लिख सकते हो । वस्तुतः यह वर्णव्यवस्था नहीं । वर्णव्यवस्था का दुरुपयोग है । और द्वेष और भेद-भाव बढ़ता है । वस्तुतः वैदिक आदर्श राज्य वह होगा कि जिसके प्रबन्ध में हर ब्राह्मणत्व को योग्यता रखने वालेको ब्राह्मण के कर्तव्योंके पालन का अवसर मिले और उसीके द्वारा वह जीविका प्राप्त कर सके । इसी प्रकार अन्य लोग भी । कोई न निठल्ला रहे, न भूखा रहे, न अपने गुणों का दुरुपयोग करते के लिए प्रेरित हो सके । इस प्रकार वर्णव्यवस्था कर्म तथा फल दोनों का यथोचित निर्धारण करती है । वर्णव्यवस्था केवल आध्यात्मिक प्रस्न नहीं । आर्थिक प्रश्न भी है । जीविका का भी प्रश्न है । इसलिये एक बात और स्पष्ट होजाती है, जो शायद नई-सी प्रतीत हो, परन्तु वेदमंत्र पर विचार करने से उचित प्रतीत होती है । वह यह कि चातुर्वर्ण्य का सम्बन्ध केवल गृहस्था आश्रम से है । क्योंकि गृहस्थ आश्रम ही मानव-समाज का मुख्य और व्यावहारिक भाग है । मनुजी ने भी गृहस्थ आश्रम को सब आश्रमों का मूलाधार माना है । अन्य आश्रम गृहस्थ के ही आश्रित हैं । ब्रह्मचर्य आश्रम में समाज के चार वर्गों का प्रश्न ही नहीं उठता । हर शिशु को पूर्ण रीति से विकास करने का अवसर मिलना चाहिए । वर्ण तो गुणोंकी परीक्षा के पश्चात् ही निश्चित हो सकेगा । कच्चे फलों का वर्गीकरण कैसा ? जिस देश में पिताओं को प्रतिष्ठा देखकर बच्चों को शिक्षा का प्रबन्ध हो वह देश उन्नत तो नहीं कहा जा सकता । जहां वेद पढ़ाने के लिए कुल के पूर्वजों का इतिहास देखना आवश्यक हो वहां पक्षपात भी अवश्य होगा । और बहुत से शिशु शैशवकाल में ही अयोग्य सिद्ध हो जायगे । मध्यकालीन संस्कारों तथा रस्मोरिवाज में जो पग-पग पर वर्ग-भेद के चिह्न मिलते हैं वह आदि वैदिक काल के तो नहीं हो सकते और उन्होंने अपने काल में समाज की पर्याप्त हानि की होगी । वही संस्कार हम को दायभाग में मिले हैं । दानप्रस्थी और संन्यासियों में चार वर्गों का भेदभाव होना भी ठीक प्रतीत नहीं होता । ब्राह्मण वानप्रस्थी, क्षत्रिय वानप्रस्थी, वैश्य वानप्रस्थी, शूद्र वानप्रस्थी और इसी प्रकार ब्राह्मँ संन्यासी, क्षत्रिय संन्यासी, वैश्य संन्यासी और शूद्र संन्यासी का क्या अर्थ ? यह दोनों आश्रम तो वर्ण-भेद से ऊपर उठ जाते हैं । जब वर्णव्यवस्था जन्म-परक मानली गई तो संन्यासियों में भी दलबन्दी हुई । सम्प्रदायों की अपेक्षा से संन्यासियों का भी वर्गीकरण हुआ । पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा का केवल रूप बदला । पुत्रैषणा का स्थान

..22 వ పేజీ తరువాయి

మొదలైన గ్రంథాలు స్వాధ్యాయం క్రింద చదువుకొని, రాట్నం వడికి మళ్లీతన ఆఫీసుకు టైం ప్రకారం వెళ్ళిపని చూచుకొనేవాడు. ప్రధాన మంత్రిగా దొరికితే మనకు టైం లేకుండా పోతుందా ! '

Where there is a will there is a way'

మనకుమనసు ఉండాలిగాని మార్గం దొరక్కపోతుందా అన్నారు పెద్దలు.

విద్యను అర్థాన్ని ఎప్పుడూ సాధిస్తుండాలి :-

క్షణశః కణ శశ్చైవ విద్యాం అర్థంచ సాధయేత్ । క్షణ త్యాగే కుతో విద్యా కణ త్యాగే కుతే ధనమ్ ॥

క్షణం వృధా కాకుండ విద్యను ఆర్జించాలట. ప్రతిపైసా కూడ బెట్టి ధనాన్ని సంపాదించాలట. అలా కాకుండా విలువైన సమయాన్ని వృథాచేస్తే విద్య ఎలా అబ్బుతుంది. కొంచెం కొంచెం డబ్బు ఖర్చు పెడుతూ ఉంటే ధనమెలా చేకూరుతుంది అన్నారు మన పూర్వులు. కనుక మనం సమయం యొక్క విలువను గుర్తెరిగి ఎక్కువ సమయాన్ని ఆధ్యాత్మిక చింతనలో గడపడానికి ప్రయత్నించాలి.

ఈ వ్యాసంలో మొదట వివరించినట్లు ఈ మానవ జీవితం అస్థిరమైందే కాని అమూల్య మైందని కూడ మనం గ్రహించాలి. పశుపక్ష్యాది శరీరాల కంటె మానవ శరీరం మనకు లభించడం అదృష్టమని, ఈ శరీరం ద్వారానే మనం భగవంతుణ్ణి పొందడానికి వీలున్నదని, మిగిలిన జంతు శరీరాల్లో ఆ అవకాశం లేదని, కేవలం ప్రాపంచిక విషయ భోగాల్లోనో, ధన సంపాదనలోనో జీవితం వ్యర్థం చేసికోవడం సబబు కాదని, ఎంతగా భోగాలు అనుభవిస్తే అంతగా మనిషి రోగగ్రస్తుడవుతాడని, ఈ మానవ జీవితంలోనే భగవంతుణ్ణి పొందలేక పోతే గొప్ప నష్టం జరుగుతుందని గుర్తించి జీవిత లక్ష్యమైన పరమ పురుషార్థం. మోక్షాన్ని సాధించే ప్రయత్నం సర్వులు చేయగలరని అందుకు తగిన శక్తి యుక్తులు, ప్రేరణ మనకు భగవంతుడు ప్రసాదించాలని కోరుతాను. తథాస్తు !

ఓ3మ్

ఆహ్వానము

ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర. -తెలంగాణ ఆధ్వర్యములో

మహర్షి దయానంద కృత అమర గ్రంథము

సత్యార్థ ప్రకాశము

తెలుగు సంస్కరణము యొక్క

విమోచన సమారోహము

తేది : ఆదివారము 04-08-2019 రోజున మ॥ 2-00 గం॥ల నుండి ప్రారంభమగును

స్థలము : పం. నరేంద్ర భవనము, రాజమొహల్లా, హైదరాబాద్.

ముఖ్య అతిథి & విమోచన కర్త : గౌ॥ శ్రీ జి. కిషన్‌రెడ్డి గారు

(భారత ప్రభుత్వ సహాయ గృహ మంత్రి)

సత్యార్థ ప్రకాశము యొక్క విమోచన సమారోహ సందర్భమున వైదిక విద్వాంసుల యొక్క సందేశములుండును. ఈ సందర్భమున విద్వాంసుల యొక్క సన్మానము కూడా నిర్వహించబడును కావున తామందరు అధిక సంఖ్యలో పాల్గొనగలరని మనవి

గౌ॥ అతిథులు :

1) గౌ॥ స్వామి బ్రహ్మానంద్ సరస్వతీ గారు
2) గౌ॥ మాతా నిర్మల యోగ భారతి గారు
3) గౌ॥ డా॥ విజయవీర విద్యాలంకార్ గారు
4) గౌ॥ ఆచార్య ఆనంద ప్రకాష్ గారు
5) గౌ॥ ఉదయనాచార్య గారు
6) గౌ॥ ఆచార్య భవభూతి గారు
7) డా॥ కోడూరి సుబ్బారావు గారు
8) గౌ॥ పం. చలవాది సోమయ్య గారు
9) గౌ॥ డా॥ వసుధా శాస్త్రి గారు
10) గౌ॥ డా॥ రమేష్‌చంద్ర గారు
11) గౌ॥ శ్రీ డీ.ఎన్. గౌరీ గారు
12) గౌ॥ శ్రీ సరసం రామచంద్రారెడ్డి గారు
13) గౌ॥ ఆచార్యా నీరజ గారు
14) శ్రీమతి మాచిరాజు అమృత కుమారి

(కీ॥ శే॥ మాచిరాజు శివరామరాజు గారి ధర్మపత్ని)

అధ్యక్షత : శ్రీ ఠాకూర్ లక్ష్మణ్ సింగ్ గారు (సభ ప్రధాన్)

నిర్వాహకులు : శ్రీ విఠల్ రావు ఆర్య గారు (మంత్రి సభ)

నూతన తెలుగు సంస్కరణ సత్యార్థ ప్రకాశము యొక్క విమోచన సమారోహానికి అత్యధిక సంఖ్యలో విచ్చేసి కార్యక్రమమును జయప్రదము చేయగలరని కోరుచున్నాము.

భవదీయ :

ప్రతినిధి సభ అధికారులు, అంతరంగ్ సభ్యులు

ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర. -తెలంగాణ, హైదరాబాద్.

(మధ్యాహ్నము 1-00 గం॥ నుండి భోజన వ్యవస్థ చేయబడినది)

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month
आर्य जीवन 18-07-2019 Registered-Reg. No. HD/783/2018-20 RNI No. 52990/93

ఆర్య జీవన్

హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక
Editor :Vithal Rao Arya, M.Sc. LL.B., Sahityaratna.
Arya Pratinidhi Sabha AP-Telangana, Sultan Bazar, Hyderabad-500095
Phone No. : 040-24753827, 66758707, Fax : 040-24557946.
Annual Subscription Rs. 250/- సంపాదకులు: విఠల్ రావు ఆర్య, మంత్రి సభ.

To,

మహర్షి యోగ సమితి

ఆర్య సమాజము, 1-3-730, కవాడిగూడ, భాగ్యనగర్.

అంతర్జాతీయ యోగ దినోత్సవము
21-6-2019

అంతర్జాతీయ యోగ దినోత్సవము సంద ర్భములో మహర్షి యోగ సమితి ఆధ్వర్యములో 14-6-2019 నుండి 20-6-2019 వరకు ప్రతిరోజు ఉదయము 6-30 నుండి 7-30 గంటల వరకు యోగ శిబిరము ఆర్య సమాజము కవాడిగూడలో నిర్వాహణ జరిగి నది. ఈ యొక్క శిబిరములో శ్రీ నరేష్ (యోగ గురువు) శ్రీ ఆనంద, శ్రీ వెంకట, శ్రీ శ్రీనివాసు గార్లు అందరికి యోగ నేర్పించినారు.

21-6-2019, శుక్రవారము రోజున అంతర్జాతీయ యోగ దినోత్సవము ఉదయము 9.00 గంటలకు వాజపెయి జి.హెచ్.ఎం.సి. ప్లే గ్రాండు, గాంధీనగర్, కవాడిగూడలో నిర్వాహణ చేయడమైనది. ఇందులో వివిధ పాఠశాలల విద్యార్థులు, టీచర్లు యోగ అభిమానులు పాల్గొన్నారు.

ఈ యొక్క యోగ దినోత్సవమునకు ముఖ్య అతిథిగా మాన్యశ్రీ విఠల రావు ఆర్య, ఆర్య ప్రతినిధి సభ మంత్రి, శ్రీ ఎస్.జనార్థన్, మహర్షి యోగ సమితి అధ్యక్షులు, శ్రీ వనజ కుమార్, సంస్కృతి ఫౌండేషన్ శ్రీ నారాయణమూర్తి, సంగీతం మాస్టరు, శ్రీ రాము రమేష్ బి.జె.పి. ముషీరాబాదు నియోజకవర్గ కన్వీనరు, శ్రీ కోలని శంకరు రావు, బస్తి పెద్దలు, శ్రీమతి శ్రీలక్ష్మి ప్రాధానో పాధ్యాయరాలు, శ్రీ రాజేశ్వర, శ్రీ శ్యామ గోయింక అగర్‌వాల్ సమాజ ప్యారడైస్ బ్రాంచి అధ్యాపకులు మరియు పరులతో కలిపి శ్రీ నరేష్ (యోగ గురువు), శ్రీ ఆనంద్, శ్రీ వెంకట, శ్రీ శ్రీనివాస్ గార్లు యోగ చేయించినారు.

श्रद्धांजलि
श्रीमती विजयलक्ष्मी पवार जी का देहावसन

हैदराबाद राज्य के स्वतंत्रता सेनानी स्व. श्री नारायण राव पवार जी की धर्मपत्नी श्रीमती विजयलक्ष्मी जी पवार का दिनांक १६ जुलाई २०१९ को प्रातः ५-०० बजे ८८ वर्ष कि आयु में निधन हुआ। वे बहुत ही मिलनसार दक्ष महिला थी। जीवनभर आर्य समाज के प्रति निष्ठावान व समर्पित रही! और उनके पश्चात उनका परिवार भी आर्य समाज के प्रति समर्पित है। उनकी अन्त्येष्टी सायं ७-०० बजे अम्बरपेट श्मशान वाटिका में वैदिक रीति से सभा के उपप्रधान श्री हरिकिशन जी वेदालङ्कार एवं पं. प्रियदत्त जी शास्त्री के आधीन में सम्पन्न हुई। परिवार के सभी सदस्यों ने मुखाग्नी दी। इस अवसर पर सभा के उपमंत्री आर. रामचन्द्र कुमार जी, पी. सत्यनारायणजी उपस्थित थे। अंत में सभा की ओर से परमपिता परमात्मा से प्रार्थना की गई कि दिवंगत आत्मा को शांति तथा उनके दुःखी परिवार को कष्ट सहने का साहस दे।

श्रद्धांजलि

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र. -तेलंगाना के पूर्व उपमंत्री एवं पुरोहित पं. सत्यव्रत जी की माताजी श्रीमती शीलम मल्लम्मा जी का देहांत दिनांक ११ अगस्त २०१९ को उनके पैत्रिक गाँव हसनपर्ति में हुआ। वे लगभग ९० वर्ष की थी। वे स्वतंत्रता सेनानी थी। सभा की ओर से सभा प्रधान ठा. लक्ष्मण सिंह जी, उपप्रधान हरिकिशन वेदालङ्कार जी ने अन्त्येष्टी में भाग लिया। अत्येष्टी वैदिक पद्धति के अनुसार हरिकिशन वेदालङ्कर जी के देखरेख में सम्पन्न हुई और अंत में परमपिता परमात्मा से प्रार्थना की गई कि दिवंगत आत्मा को शांति तथा उनके दुःखी परिवार को कष्ट सहने का साहस दें।

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUE MAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR.
Editor : Vithal Rao Arya ● E-mail : acharyavithal@gmail.com, Mobile : 09849560691.
సంపాదకులు శ్రీ విఠల్ రావు, మంత్రి సభ, ఆర్యప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ, సుల్తాన్ బజార్, హైదరాబాద్-95. Ph : 040-24753827, E-mail : acharyavithal@gmail.com
संपादक :श्री विठ्ठल राव मंत्री सभा ने सभा की ओर से आकृति प्रिन्टर्स, चिक्कड़पल्ली में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया।
प्रकाशक : आर्य प्रतिनिधि सभा, आं.प्र. -तेलंगाना, सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद-500 095.